अवध
के
लोक नाट्य
का
अध्ययन

सर्वेक्षण, संकलन एवं अभिलेखीकरण

1. लोकगाथा : परिचय एवं स्वरूप

2. अवध क्षेत्र का लोक नाट्य ढोला

3. अवध का लोक नाट्य कठपुतली

4. नौटंकी : कुछ सोच कुछ विचार

5. नौटंकी : एक परिसंवाद

6. नौटंकी की नायिका पद्मश्री गुलाब बाई

7. नाट्यानुभव

8. लोक कलाएँ : हमारी संस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति

9. लोक नाट्य : नौटंकी वैशिष्ट्य और विडम्बना

10. अवध की प्रतिनिधि : लोक विधायें

11. कलाकारों की सूची

12. फोटोग्राफ

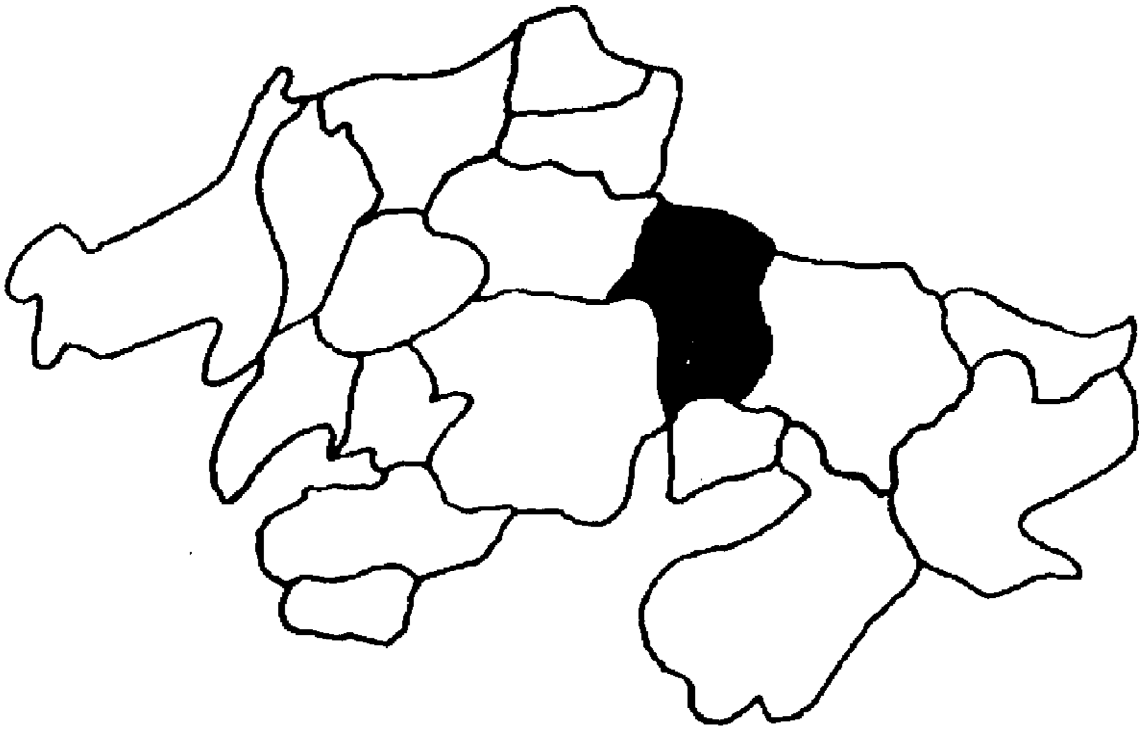

अवध अंचल

इलाहाबाद, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, अम्बेडकर नगर, फैजाबाद, बस्ती, गोण्डा, बहराइच, श्रावस्ती, लखीमपुर खीरी, रायबरेली, उन्नाव, हरदोई, लखनऊ, सीतापुर।

लोकगाथा: परिचय एवं स्वरूप

भारतीय संस्कृति को अपने अन्तर में समेट कर बहने वाली लोकमन्दाकिनी चिरकाल से भारत की धरती, भारत के जन हृदय को आप्लावित करती आयी है। लोक मन्दाकिनी की ऐसी ही उदात्त धारा है-लोकगाथा, जिसमें भारत का धर्म, लोक-विश्वास, मूल्य, लय-तालरहन-सहन, आचार-व्यवहार, संस्कार, परम्परा से सुरक्षित हैं। इन्हें सुरक्षित रखने का श्रेय है-यहाँ के लोक जन को, जिनके कंठ में आरूढ़ होकर वह धारा युग-युगान्तर से आदमी के जीवन की अभिव्यक्ति करती आ रही है।

लोक गाथा क्या है?

लोकगाथा को विभिन्न अंचलों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। महाराष्ट्र में इसे ''पंवाडा'', गुजरात मतें ''कथागीत'', राजस्थान में ''गीतकथा'', कन्नौज में ''साकौं'' आदि। वास्तव में लोकगाथा लम्बा कथात्मक गीत होता है। डॉक्टर कृष्णदेव उपाध्याय लोक कथाओं की मीमांसा करते हुए लिखते हैं कि-''भारतीय भाषाओं में जो लोकगीत पाये जाते हैं उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे गीत जो आकार में छोटे हैं, जिसमें कथानक का अभाव है और जिनकी प्रधान विशेषता गैयता है। दूसरे प्रकार के

वे गीत हैं जो आकार में बड़े हैं, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गैयता भी है। काव्य की भाषा में इन्हें मुक्तक और प्रबंध काव्य कह सकते हैं। संस्कार तथा ऋतु संबंधी समस्त गीत प्रथम कोटि में आते हैं और लोरकी, विजयमल, नयकता-बनजारा, भरथरी, गोपीचन्द, सोरठी, हीर-रांझा, ढोलामारू, राजा रसालू आदि के गीत द्वितीय श्रेणी में आते हैं।''

डॉ. उपाध्याय प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीतों की श्रेणी में रखते हैं तथा द्वितीय प्रकार के गीतों को, जिनमें कथ्य की प्रधानता होती है, लोकगाथा की श्रेणी में।

''लोकगाथा'' शब्द बना है लोकगाथा शब्द के सहयोग से। ''लोक'' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के ''लोकदर्शने'' धातु में ''धत्र्'' प्रत्यय लगने पर होती है, जिसका अर्थ है-देखना ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए ''जन'' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। इसमें यह शब्द कई स्थानों पर साधारण जनता के लिए हैं।

प्रयुक्त हुआ है अंग्रेजी में लोक शब्द के स्थान पर ''फोक'' शब्द का प्रयोग होता है तथा साहित्य में ''फोक'' शब्द के लिए ग्राम, जन और लोक शब्द प्रयुक्त होते हैं।

''गाथा'' शब्द का प्रचार उत्तरी भारत में बहुत है। इसमें कथामकता और

गेयता दोनों का समावेश है। साथ ही यह प्राचीन परम्परानुगत शब्द भी है। इसमें कथात्मकता और गेयता दोनों का समावेश है। साथ ही यह प्राचीन परम्परानुगत शब्द भी है। वैसे ''गाथा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में परिलक्षित होता है। (ऋग्वेद८/३२/१) यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा प्रचलित थी। इनके गाने वालों को ''गाथिन'' कहा जाता था। हिन्दी में यह शब्द वृतांत या जीवनी के अर्थ के रूप में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने के कारण ही कालान्तर में यह शब्द आख्यान, कहानी या जीवनी, वृतांत के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है।

लोकगाथा शब्द को अलग-अलीग विश्लेषित करने के पश्चात् हम लोकगाथा शब्द पर दृष्टि डालते हैं।

लोकगाथा में समानार्थी अंग्रेजी भाषा में ''बैलेड'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ''बैलेड'' की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द ''बैलारे'' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है-नाचना। कालान्तर में इसका प्रयोग किसी भी गीत के लिए जिसे जनता का एक दल सामूहिक रूप से गाता हो, किया जाने लगा। राबर्ट प्रेम ''बैलेड'' शब्द का संबंध ''बैलेट'' शब्द से मानते हैं, जो नृत्य के साथ-साथ गाया जाता है।

डॉ. कैलाश चन्द्र अग्रवाल इसको और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''लोकगाथा'' लोक साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी एक कथा का वर्णन गीतात्मक ढंग से (गैयी शैली में) किया जाता है। इसमें कहानी और गीत दोनों के गुण विद्यमान है। कहानी के अंग-कथानक, चरित्र, संवाद आदि तथा गीत के तत्व जैसे-जय, ताल, टेक आदि का समावेश लोकगाथा में रहता है।

डॉ. शंकर लाल यादव के अनुसार ''लोकगाथा एक लोक महाकाव्य होता है।''

प्रो. क्रिस्टरेज के अनुसार-''बैलेड गीत हैं, जिसमें कथा हो अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई हा े।

डॉ. मुरे के अनुसार-''बैलेड छोटे पदों में रचित एक ऐसी स्फूर्तिदायक सरल कविता है जिसमें कोई लोकप्रिय कथा अत्यंत ही संजीव ढंग से कही गई हो।

अंग्रेजी विश्वकोष के अनुसार बैलेड ऐसी पद्य शैली का नाम है जिसका रचयिता अज्ञात हो, जिसमें साधारण आख्यान हो और सरल मौखिक परम्परा के लिए उपयुक्त तथा रचित कलाओं को सूक्ष्मताओं से रहित हो।

डब्लू.पी.कर नामक विद्वान द्वारा दी गई परिभाषा ''लोकगाथा की विशेषताओं

को समेट कर लोकगाथा को समग्र रूप से स्पष्ट कर देती है। इनके अनुसार-''बैलेड वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोक कंठ में विकसित होता है, या लोकगाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि के द्वारा रचा गया है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकेता दोनों होती है, जिसका प्रचार जन साधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है।

उपार्युक्त सम्पूर्ण परिभाषाओं का विश्लेषण कर हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि लोकगाथा कथात्मक छन्दों से बद्ध गेय और लोककंठ पर अवस्थित काव्य है जिसका रचयिता अज्ञात होता है पर कभी-कभी ज्ञात भी (जैसे आल्हा के रचयिता जगनिक) तथा वह सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति होती है।

लोकगाथा की सामान्य विशेषताएँ

यह तो निश्चित है कि लोकगाथायें आदिम की अभिव्यक्ति उसके आचार-विचार तथा क्रियाकलापों की परम्परा से पोषित करती आयी हैं।

यह सम्पूर्ण मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति होती हैं। विद्वतजनों ने लोक-गाथाओं के स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए उसकी कुछ विशेषताओं की चर्चा की है।

जिनका परिचय निम्नवत् है-

१. लोकगाथा का रचयिता अज्ञात होता है।

२. लोककंठ में अवस्थित होने के कारण प्रमाणित मूलपाठ का अभाव होता है।

३. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य होते हुए भी शास्त्रीयता का अभाव रहता है।

४. क्षेत्रगत पाठों के कारण स्थानीयता का प्रचुर पुट प्राप्त होता है।

५. यह मौखिक परम्परा में ही कंठानुकंठ आश्रय पाकर ही गतिशील है।

६. अलंकृत शैली के स्थान पर सहजता की प्रमुखता रहती है।

७. उपदेशात्मकता के स्थान पर लोक मंगल की भावना प्रधान होती है।

८. समूह की थाती होने के कारण रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव होता है।

९. वृहद कथानक होता है।

१०. टेक पदों की पुनरावृत्ति रहती है।

हिन्दी लोकगाथाओं के अनुशीलन पश्चात् उनकी निम्नलिखित विशेषतायें प्रमुख रूप से उभर कर आती है।

१. सभी लोकगाथाओं के प्रारम्भ में सुमिरनी गायी जाती है जिसमें स्थानीय देवताओं का वन्दन, आह्वान होता है।

२. वीरता प्रधान लोकगाथाओं में दो भाइयों का सहयोग अधिकांश लोकगाथाओं में है। यह पौराणिक मिथक है-राम-लक्ष्मण, कृष्ण-बलराम के समकक्ष।

३. प्रेम प्रधान गाथायें अधिकांशत चारागाह या पशुपालक संस्कृति की हैं।

४. लगभग सभी लोकगाथाओं में नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है।

५. अधिकांश वीरतापरक लोकगाथाओं के काव्य में युद्ध का विषय विवाह अथवा गौने का प्रसंग हैं। कुछ गाथाओं में प्रतिशोध की भावना।

६. प्रेम प्रधान लोकगाथाओं के सामाजिक नियमों की अवहेलना और उश्रृंखलता दिखाई पड़ती है किन्तु भावप्रधानता का उच्चतम शिखर है।

७. अधिकांश गाथाएं जाति विशेष में रूढ़ हो गई हैं। इनका संरक्षण संबंधि

ात जाति विशेष द्वारा किया जा रहा है।

८. सद् के प्रति अति आग्रह इन गाथाओं का अनिवार्य तत्व है।

९. अधिकांश लोकगाथाओं में चमत्कारिक अथवा प्रभावी घोड़ों का उल्लेख है।

१०. जादू, टोने, मंत्रों का उल्लेख प्रत्येक गाथा में है।

११. अलौकिक पात्र-दानव, डायन या भूत-प्रेत और देवी-देवताओं का वर्णन सभी गाथाओं में है।

१२. दौत्य कर्म के लिए धोबिन, मालिन का मानवीय पात्रों में तथा चील, तोता और हंस का अमानवीय पात्रों के रूप में उल्लेख है।

१३. जिन लोकगाथाओं में नायक की मृत्यु होती है, वहां छगुनिया काट कर खून टपकाकार शंकर-पार्वती की कृपा से जीवित होने का मिथक है।

१४. अधिकांश वीरतापरक गाथाओं में नायिकाओं (जो वाग्दत्ता है अथवा जिनका नाक से बाल विवाह हुआ है) द्वारा नायक को गौने के लिए आंमत्रित करने के प्रसंग है।

१५. अधिकांश लोकगाथायें सुखान्तक हैं। दुखान्तक गाथाओं में भी लोक सुख अथवा शांत रस का भाव अनुभव करता है।

१६. समस्त लोकगाथाओं के गायक वाद्यों का साथ लेते हैं।

लोक गाथाओं की उत्पत्ति

लोकगाथाओं की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। इनके सिद्धान्तों में प्रचुर प्राथक्य पाया जाता है। कोई विद्वान इसकी उत्पत्ति समुदाय से मानता है तो कोई व्यक्ति विशेष से। कुछ लोग चारणों द्वारा गाथा अधिक गायी जाने के कारण उन्हें इसका रचयिता मानते हैं। तो कुछ लोग किसी जाति विशेष को ही इसका कर्ता स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह है कि विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखा है।

विभिन्न विद्वानों के प्रचलित मतों को डॉ. उपाध्याय ने प्रमुखतः छः सिद्धांतों में विभाजित किया है।

१. ग्रिम का सिद्धांत - समुदायवाद

२. श्लेगल का सिद्धांत - व्यक्तिवाद

३. स्टेंथल का सिद्धांत - जातिवाद

४. विशपर्सी का सिद्धांत - चारणवाद

५.चाइल्ड का सिद्धांत - व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद

६. उपाध्याय का सिद्धांत - समन्वयवाद

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों में डॉ. उपाध्याय का समन्वयवादी सिद्धांत अधिक प्रभावी है।

डॉ. उपाध्याय का समन्वयवाद का सिद्धान्त पूर्णतया भारतीय पृष्ठ भूमि पर आधारित है। उनका मत है कि पूर्व उल्लेखित सभी सिद्धांत कारणाभूत है। इन सबका सहयोग इन गाथाओं के निर्माण में उपलब्ध होता है। ये समुदाय रूप से इनकी निर्मित के हेतु है, पृथक-पृथक नहीं। यह स्वीकार करने में किसी को संकोच नहीं होना चाहिए कि कुछ गीत और भी गाथाओं में व्यक्ति की रचनाएं है। जैसे-ईसुरी की फाग, पुरवी के गीत, कवि भिखारी ठाकुर का विदेशिय नाटक आदि। वही लोकगाथाओं की रचना में समुदाय का योग होता है। उनके गीत किसी जाति विशेष के लोगों में विशेष रूप से उपलब्ध है। उदाहरण के लिए विरहा को लिया जा सकता है जो कि अहीर जाति के लिए रूढ़ हो गया है। आदिम जातियों में समूह गान की प्रथा आज भी प्रचलित है। साथ ही चरणों द्वारा रचित कथाओं का भी अभाव नहीं हैं। जगनिक तथा चन्दबरदाई

कृत्य काव्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अधिकांश लोकगाथाओं में रचयिता अज्ञात हैं जिनके संबंध में कुछ पता नहीं। जिनका नाम पता चल जाता है तो कालांतर में परवर्तित एवं परिवर्धित रचना प्राप्त होने के कारण उनके व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ. उपाध्याय का सिद्धांत इन सभी विभिन्न मतों में समन्वय स्थापित करता है। इसलिए इसे समन्वयवाद के नाम से अभिहित किया जाता है।

लोकगाथाओं का वर्गीकरण

लोकगाथाओं के स्वरूप को देखते हुए उसके कई विभाजन सम्भव हैं।

जैसे कि-प्रकाशित और अप्रकाशित गाथाएं साहित्यिक लोकगाथायें, चारण लोकगाथायें या परम्परागत लोकगाथायें। प्रारम्भ में तो इन गाथाओं के विभाजन पर कोई सम्यक दृष्टि नहीं थी किन्तु कालान्तर में इनका विभाजन, वर्गीकरण सम्भव है। लोकगाथाओं का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है।

१. आकार की दृष्टि से तथा २. विषय की दृष्टि से।

आकार की दृष्टि से यह गाथाएं दो प्रकार की होती हैं-

१. लघु २. वृहत

विषय की दृष्टि से विद्वानों ने लोक गथाओं पर विस्तार से विचार किया गया है। प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं का वर्गीकरण निम्नांकित छः श्रेणियों में किया हैं-

१. प्राचीन

२. कौटुंबिक एवं अलौकिक गाथाएं

३. शौकपूर्ण एवं अलौकिक गाथाएं

४. निजंधरी गाथाएं

५. सीमांत गाथाएं

६.आरण्यक गाथाएं

प्रो. क्रिस्ट्रीज ने लोकगाथाओं को दो भागों में बांटा है-

१. चारण गाथाएं २. परम्परागत गाथाएं

प्रथम प्रकार की गाथाओं का आधार विशपर्शी द्वारा देय उत्पत्ति सिद्धांत चारणवाद पर आधारित है जिसका पूर्व विवेचना किया जा चुका है। परम्परागत

गाथाओं से कीस्ट्रीज का अभिप्राय उनसे है जो चिरकाल से चली आ रही हैं तथा जिनका प्रचार और प्रभाव आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है।

भारत के डॉ. उपाध्याय का वर्गीकरण ''भारतीय लोकगाथाओं के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। प्रचलित भोजपुरी लोकगाथाओं को उन्होंने तीन भागों में विभाजित किया है-

१. वीर कथात्मक गाथाएं

२. प्रेम कथात्मक गाथाएं

३. रोमांचक गाथाएं

उपर्युक्त विभाजन का आधार भेजपुरी लोकगाथाओं में प्राप्त प्रमुख तीन तत्व वीर, प्रेम, रोमांच से ग्रहण किया है।

लेकिन जब डॉ. सत्व्रत सिन्हा ने भोजपुरी लोकगाथाओं पर कार्य किया है तो उन्होंने उपर्युक्त तीन तत्वों तथा विभाजन को प्राथमिकता देते हुए भोजपुरी के एक और प्रसिद्ध तत्व योग का महत्व समझते हुए भोजपुरी गाथाओं में, 'योगकथात्मक लोकगाथायें विभाजन बढ़ा दिया।

डॉ. सत्यागुप्त ने लोकगाथाओं को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया

है-वीर कथात्मक, प्रेम कथात्मक तथा पौराणिक कथाएं।

इन वर्गीकरणों का यह अर्थ कदापि नहीं समझना चाहिये कि इसके अतिरिक्त अन्य तत्वों का अभाव है। लोकगाथा के भाव को ''रस'' की भांति ही लेना चाहिए जिस प्रकार किसी कविता के रस का आस्वादन करने में संचारी भाव सहयोग करते हैं वैसे ही लोकगाथाओं में एक भाव विशिष्ट होते हुए भी अन्य भावों की गति प्रदान करते है। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध लोकगाथा आल्हा का लिया जा सकता है।

वैसे तो आल्हा वीर कथात्मक लोकगाथा की श्रेणी में आता है। किन्तु उसमें प्रेम, रोमांच, योग, धर्म सात्विकता आदि गुणों का समावेश भी पाया जाता है।

मेरे विचार से यदि डॉ. उपाध्याय के रोमांचक, डॉ. सिन्हा के योगकथात्मक तथा डॉ. सत्यागुप्त के पौराणिक गाथाएं विभाजन के स्थान पर यदि धार्मिक गाथाएं शब्द रख दिया जाय तो तीनों प्रकार की गाथाओं को एक वर्गीकरण में समाविष्ट किया जा सकता है। मेरा निजी मत यह भी है कि रोमांच और योग यह दोनों ही तत्व भारीय लोक गाथाओं के अनिवाय तत्व हैं और ये वीर, प्रेम तथा धार्मिक सभी प्रकार की कथाओं में व्यवृहत होते हैं।

अवध क्षेत्र का लोकनाट्य–ढोला

ढोला

ढोला एक लोक नाट्य है। अवध क्षेत्र मतें यह विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में नृत्य एवं गायन शैली में मंचित किया जाता है। यह विधा विशेष रूप से निम्नवर्गीय लोगों के द्वारा समय-समय पर शादी ब्याहों व उत्सवों आदि में गाया जाता है।

कथानक

ढोला का कथानक पौराणिक कथाओं पर आधारित रहता है तथा समय-समय पर इसमें स्थानीय कथानक भी सम्मिलित होते रहते हैं। यह शैली विशेष रूप से भरथरी कथा आल्हा उदल कथा, पीगला आदि कथाओं पर आधारित रहते हुए गा या जाता है।

पात्रता

इसमें महिला व पुरुष दोनों कलाकार के रूप में सम्मिलित रहते हैं। अधिकतर महिला का पार्ट (भूमिका) पुरुष ही निभाते हैं। कहीं-कहीं पर

महिलायें भी इस भूमिका में रहती हैं। जो पात्रता के अनुसार वेशभूषा में मंच पर आती है।

वेशभूषा

इसमें कथानक के अनुसार सामान्य वेशभूषा में कलाकार कोई भी राजा या रानी की पारम्परिक वेशभूषा नहीं पहनते हैं। यह सामान्य तौर पर देखा गया है कि इनकी कोई प्रोफेशनल मंडली न होने के कारण घरेलू कपड़ों में ही रहते हैं। चूंकि गांव में खेतीबाड़ी या मजदूरी का काम करने वाले किसान या मजदूर काम करने के बाद रात्रि में कलाकार के रूप में मंच पर आते हैं, जिससे वेशभूषा का बहुत अधिक ध्यान नहीं देते हैं।

ढोला या उदय एवं विकास तथा वर्तमान स्थिति

यह विधा पुराने समय में शादी व अन्य मांगलिक अवसरों पर मरोरंजन करने के लिए ग्रामीण अंचलों में इसका उदय हुआ। धीरे-धीरे यह विधा निम्नवर्गीय समाज में लोकप्रिय होने लगी। ढोला के कलाकार ग्रामीण क्षेत्रों में ही पाये जाते थे जो दिनभर खेतीबाड़ी, मजदूरी या अपना कार्य करने के बाद रात्रि के समय ग्रामीदण सुविधाओं के अनुरूप (तख्त, गैसबत्ती, आदि के प्रकाश में) मनोरंजन करने के लिए ढोला लोकनाट्य का मंचन इसी कथानक को लेकर

करते थे। यह कलाकार व्यावसायिक नहीं होते थे तथा इनका इस क्षेत्र में भी कोई व्यवसाय नहीं था। जो कलाकार व्यावसाय की दृष्टि से इस ओर बढ़ना चाहते थे या तो वे कुछ समय पश्चात इसके कलाकारों का रुझान नौटंकी या अन्य माध्यामों की ओर बढ़ना शुरू हुआ जिसके कारण इसका बहुत अधिक विकास नहीं हो पाया। धीरे-धीरे यह विधा मृतप्राय होती गयी।

वर्तमान समय में इसके कलाकार या तो मर चुके हैं या बुढ़े हो गये हैं। इधर पांच-छः वर्षों से इस विधा का कोई मंचन नहीं होता दिख रहा है तथा इसका जो अकादमियों या अभिलेखागार कार्यालयों में ही सुरक्षित होगा।

इस लोकनाट्य विधा पर कोई लेख या समाचार पत्रों में भी उल्लेख नहीं मिलता है। पुराने ग्रामीण लोगों से वार्ता के आधार पर ही इस विधा की थोड़ी बहुत जानकारी मिल पाती है।

अवध का लोक नाट्य कठपुतली

सामाजिक लोक-नाटकों में कठपुतली मनोरंजन का महत्वपूर्ण माध्यम है। कठपुतली राजस्थान की सरहदों को पारकर अवध-क्षेत्र में गुलाबो-सिताबो के झागड़े के रूप में लोकप्रिय हैं। बड़े-बड़े नगाड़ों की टंकार के बीच जब नगड़िया टनकती है, तब रात-रात भर उछाह से बैठा व्यक्ति स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त करता है। ख्याल, स्वांग, बहुरूपिया, भांड-भड़ैती भी महत्वपूर्ण उपकरण है। अवध के नवाब वाजिद अली शाह के समय भांड़ों की भड़ैती करते बहुत लोकप्रिय थी। शुद्ध हास्य और नकल के माध्यम से भांड, भडैती करते हैं। बच्चों के मनोरंजन में खेलों का अपना महत्व है। गीत गाते हुए खेलना लोक-कजीवन की विशेषता है। कोड़वा बादाम शाही, वणवा सुर्र, घुमरी परैया में बच्चे गीत गाते हुए मनोरंजन करते हैं। कबड्डी का खेल-लोक-जीवन में ब हुत लोकप्रिय है। कबड्डी खेलते हुए कई प्रकार के गीत गाए जाते हैं। जैसे ताल काटी तरकुल काटी, काटी वन कै खाझा, चल कबड्डी आल-ताल मेरी मूंझे लाल-लाल, कहां गये जवाहिर लाल...लाल लाल....।

नौटंकी–कुछ सोच, कुछ विचार

नौटंकी विधा का प्रमुख आकर्षण यह है कि इसका प्रदर्शन सामान्यतः खुले मंच पर अपार जन समूह के समझ होता है। नौटंकी तो उत्तरी भारत के सुप्रसिद्ध स्वांग–नाटकों का ही वाद में प्रचलित हुआ नाम है। इन्दर उस्ताद ने मकहला–चरित्र 'नौटंकी' को ध्यान में रखकर स्वांग की रचना की? 'नौटंकी' स्वांग ने इतनी प्रसिद्धी प्राप्त की कि स्वांग को ही नौटंकी के नाम से जाना जाने लगा। यह भारतेन्दु युग की देन है। नौटंकी रंग–कर्म की बेटी है, जिसे उत्तरी भारत ने अपनाया। इसमें उत्तरी भारत की माटी की महक है। यही महक रचती है उत्तर भारतीय रंग–मानव के मन की मस्ती। नौटंकी–कार्यक्रम प्रारम्भ होने के पूर्व जब नगाड़ों पर चोट पड़ती है तो रंगकर्मी के शरीर में थिरकन, रंगकर्मी के हृदय में धड़कन और रसिकों पर चोट पड़ती है तो रंगकर्मी के शरीर में थिरकन, रंगकर्मी के हृदय में धड़कन और रसिकों के मन में मीठी सिहरन सी उठती है। उत्तरी भारत की इस सशक्तम नाट्य–विधा में नक्कारे की चोट सुन सबसे पहले और सबसे अधिक भीड़ उमड़ पड़ती है।

परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि यह विद्या धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। यद्यपि ऐसा होना नहीं चाहिए। लोगों के मन में यह गलत धारणा है,

यह भ्रम है कि नौटंकी निम्न विधा है, नीच लोगों के लिये है, इससे दूर ही रहना चाहिये। इस भ्रम को तोड़ना है तथा सही धारणा स्थापित की जानी है। किसी भीद कलाकृति, साहित्य-कृति अथवा नाट्य-कृति की सफलता का कषक यह है कि उसे जनसाधारण ने कितना अपनाया। तुलसी ने जब रामचरित्र मानस की रचना की तो प्रकाण्ड पण्डितों और विद्वानों ने उस पर छींटाकशी की। परन्तु तुलसी की रामायण क्या है, कितनी प्रभावशाली है और कितनी प्रचलित है, यह हम आप और वे सभी जानते है। कुछ ऐसा ही तर्क तथाकथित कुत्सित नौटंकी के विषय में लागू होता है।

नौटंकी के विषय में प्रथम समस्या यह है कि किस प्रकार परम्परा का दामन थामे हुये नौटंकी का संस्कार किये जाये और आधुनिक रसिक की रुचि के उपयुक्त इसका श्रृंगार किया जाये? द्वितीय नौटकी के आश्रयदाताओं का अभाव। तृतीय चलचित्र आकाशवाणी और दूरदर्शन ने लोक मानस को विकृत किया है उसकी रुचियॉं बिगड़ चुकी है-उसका परिष्कार।

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान से ही बिगड़ी हुई बहुत-सी बाते बन सकती है। कुछ पग अविलम्ब उठाये जाने की आवश्यकता है। समाधान के रूप में प्रथम सुझाव यह है कि नौटंकी के अनुकूल वातावरण बनाते हइुये इसे समसामयिक जीवन के साथ जोड़ा जाये। द्वितीय, नौटंकी-मण्डली को नियमित

रूप से प्रदर्शन की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु इसे जन-जीवन में मेलो, समारोहों, पर्व-प्रदर्शनियों और त्यौहारो आदि में अधिकाधिक स्थान दिया जाये। तृतीय, मांगलिक कार्यों-जैसे मुण्डन, छेदन, विवाह आदि में नौटंकी, प्रदर्शन आवश्यक व्यय समझा जाये, ताकि यह मांगलिक रीति-रिवाजों की अनिवार्य कड़ीद बन सके। चतुर्थ इस विधा के उपलब्ध गुरुओं-उस्तादों को उचित आद र-सत्कार देकर उनमें व्याप्त हीन-भावना की ग्रन्थियाँ समाप्त की जायें। पंचग, नौटंकी कला केन्द्र जैसी अन्य संस्थाओं को तन-मन-धन से सहयोग दिया जाये।

परन्तु यह सब करने कौर आयेगा? किसकी पड़ी है। यह सब, हम रंगकर्मी, रंग-प्रेमी, रसिक तथा प्रशिक्षार्थीगण जो कल रंगकर्मी बनेंगे वे ही तो करेंगे। रंगकर्मी इन्द्रधनुषी कला है। पहला रंग, संसार, रंगमंच है, हम सभी कलाकार है। दूसरा कोई छोटा नहीं है, कलाकार छोटा होता है। तीसरा, अभिनय पूजा है। चौथा, नाट्य-नियमों का उल्लंघन अपराध है। पांचवॉ, कला में अपने को प्यारा करो, अपने को कला में नहीं। छठवॉ कला में अज्ञात की अनुभूति, सर्वोच्च ज्ञान है। सातवॉं, कलाकार दूसरों के लिए चिन्तित रहने हेतु ज जीवित रहता है।

वास्तव में लोक कला जनसाधारण द्वारा बनाया गया जनसाधारण का चित्र

होता है, जिसे देख-सुन जनसाधारण आनन्दित होते हैं। लोक का क्षेत्र ही बहुआयामी होता है। हर लोक को अपनी विशिष्ट और विचित्र अदा होती है। परिवार भी एक प्रकार के लोक का उदाहरण है, जैसे क्षेत्र विशेष, समुदाय विशेष, धर्म विशेष, व्यवसाय विशेष आदि होते हैं। इन सभी की लोक-कलायें होती हैं। लोक-कला को शहरी या देहाती, पूर्वी या पश्चिमी, पढ़े-लिखे या अनपढ़े अथवा धनी और निर्धन के वर्ग में विभाजित करना, अव्यवहारिक और वस्तविकता के धरातल से परे हैं। लोक कला, सनातन और समानान्तर होती है। इसके मेरुदण्ड, इसकी आत्मा और इसके आन्तरिक ढांचे में बदलाव नहीं आता। वह सनातन है, वैसे ही जैसे मुनष्य सनातन है। यह बात अवश्य है कि यद्यपि हर मनुष्य हाथ, पांव, नाक, कान वाला है, तथापि समाज की गति से वह प्रभावित हो बदलता रहता है। ठीक इसी प्रकार लोक-कला की भी स्थिति है। यदि वह समाज रूपी बहाव, उतार-चढ़ाव आदि में निरन्तर आगे बढ़ती न रही, तो वह समाप्त हो जायेगी। यही स्थिति लोक नाट्य नौटंकी की भी है। हाथरस का एक पहनावा, तो कानपुर में दूसरा, लखनऊ द्वारा की गई प्रस्तुति को नौटंकी का 'डिस्कोकारण' कहा गया। यह कहा जा सकता है कि नौटंकी प्रस्तुतियों को मात्र कुछ विशिष्ट गायमी में रखना, उसके उभरने और संवरने के सवरूप के साथ अन्याय होगा। संस्कार और श्रृंगार की बात राष्ट कवि मैथिली ारण गुप्त के ाब्दों की याद दिलाती है-परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं, किन्तु हमें तो सीधे-साधे पूर्व भाव ही भाते हैं।

नौटंकी एक परिसंवाद

आपसे क्षमा चाहूँगा कि कोई पेपर-जैसी चीज मेरे पास नहीं है, क्योंकि मेरा काम अक्सर प्रस्तुतिकरणों तक रहा है। मुझे जो विषय दिया गया था वह यह था, ''आधुनिक नाटकों में नौटंकी शेली की सम्भावनाएं और उसका प्रस्तुति पक्ष।

लोक एक निश्चित परिभाषा का शब्द नहीं है। इसके प्रचलित अर्थ इसे उस नगरीय समाज से काट देते रहे हैं जिसे सभ्य समाज कहा जाता है। संस्कार नहीं बल्कि भौगोलिक बॅटवारों के आधार पर ग्रामीण परिवेश की संस्कृति को लोप कर देने की परम्परा रही है। अजीब-सी बात है कि न गर के कलाकार ने स्वयं को कलाकार सिद्ध करने की हर चन्द कोशिश की है'' जबकि तिरस्कृत तथा तथाकथित रूप से निरक्षर कलाकार अभी तक यह नहीं समझा सके हैं कि वे भी कलाकार हैं क्योंकि कला ने उन्हें विद्वान और साक्षर नहीं बनाया है, और यही उनका संचित धन था जिसके लिए हम अक्सर उन्हें 'कल्चरलीरिच' कहतें हैं।

नाट्य-साहित्य के इतिहास में भी नाट्य-कलाकारों ने लोक-शैलियों को वर्जित ही समझा है। बहुत इधर की ही बात कहें तो प्रसाद जी की

नाट्य-रचना के काल में कौन-सी लोकनाट्य-शैली के नाटक लिखे जा रहे थे? कम से कम इसका मुझे व्यापक रूप से पता नहीं।

लोकनाट्यों की ही तरह लोकनाट्य लेखकों को हिन्दी साहित्य के काल खण्डों में शामिल नहीं किया गया। यह उनका सामाजिक नहीं बल्कि साहित्यिक तिरस्कार था। लेकिन यह एक सुखद संयोग है कि लोक-नाट्य-शैलियों और विधाओं पर इधर आधुनिक सभ्य समाज की निगाह गयी है। समय के परिवर्तन और आधुनिक तेजी ने पारम्परिक कलाओं को काफी पीछे छोड़ दिया है। समय के इस अन्तर ने उन्हें भुलाया ही नहीं, उन्हें मरणासन्न स्थिति में भी पहुंचाया। आधुनिक से आधुनिकतम होते हुए हम निरन्तर पश्चिमोन्मुखी होते रहे हैं और आयातित प्रशिक्षण और आधुनिक होने की प्रक्रिया ने सत्य की तरफ से अपनी ऑखें मूंद लेने की शुरुआत की।

वैसे पिछले दो दशक नाटक के पुनर्जीवन के दशक रहे हैं। और इनमें भी पिछला दशक इसलिए और भी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है कि इसमें नये नाटक के उद्भव, विकास और आकस्मिक पतन के क्षण रहे। एक ओर इस दशक में काफी तेज-तर्रार काम हो रहा है और दूसरी ओर अचानक इसमें सूनापन और खोखलापन भी आया है। कुछ नया करने के स्वाभिमान के कारण आधुनिकों की दृष्टि फिर से अब पुराने पर जा रही है। इसलिए इसे लोकनाट्य

शैलियों का पुर्नप्रतिष्ठान कहा जाय तो मुझे आपत्ति है। लोकनाट्य शैलियों को प्रतिष्ठा कभी नहीं मिली, लेकिन वह हमेशा लोकप्रिय रही है। उनकी लोकप्रियता और रंग उत्साह की आधुनिकों की अपनी गरज थी। लोकशैलियों की पुनर्स्थापना या उन्हें प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य नहीं।

हिन्दी नाटक की अपनी यह स्थिति नहीं रही कि उसमें लोक के प्रयासों की भूमिका बने। यहॉ प्रयोग का अर्थ लेखन में नहीं, वरन् प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में है। नौटंकी के प्रभाव कब, कहॉ, किसने, कैसे लिए होंगे, इसका कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता और यह सब इसी कारण है कि हमारे सर्वेक्षणकारों ने इसका कभी महत्व नहीं समझा। लेकिन यह बिल्कुल सच है कि आज जबकि लोकनाट्यों को प्रयोग अथवा उनका उपयोग आधुनिक नाटकों का फैशन सा बन गया है, लोक नाट्य अपनी यथास्थिति के बावजूद उतने ही जीवन्त है जितने तब थे जबकि हिन्दी नाटकों की शोचनीय स्थिति थी। आज भी नौटंकी-कलाकार अपनी शैली के आधुनिक प्रयोगों से न अवगत हैं और न उनमें यह सब जानने की इच्छा है।

आधुनिक नाटकों में नौटंकी के प्रयोग करने के इरादे सभी के लिए स्पष्ट है। यह सब आधुनिक समाज में अपनी सम्पन्नता के लिए किया जाता है। ऐसा नहीं कि नौटंकी ने आधुनिक प्रभाव ग्रहण नहीं किये। नौटंकी के जो प्रयोग

किये जाते रहे है उनमें अक्सर नौटंकी के संगीत का ही प्रयोग अधिक है। नौटंकी के अभिनय पक्ष अथवा उसके प्रस्तुतीकरण के पक्ष को अपने ढंग से लिखा गया है। यह प्रयोग एक अर्थ में बुरे इसलिए नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि इन्हीं के कारण नौटंकी आभिजात्यों ने उसे सराहा भी है। अगर मूल्यांकन की बातें करें तो यह केवल शुरुआत भर थी।

सही इरादों के लिए किये गये प्रयोगों का असर फैशन के तौर पर किये जाने वाले प्रयोगों ने कम कर दिया है और इन प्रयोगों की क्षणभंगुरता के कारण नौटंकी का रूप खण्डित ही हुआ है। ऐसे समय में जबकि फैशन की ओर आकर्षित हमारा रंगमंच अपनी जमीन की ओर आ रहा है, अधकचरे प्रयोग यही सिद्ध करते हैं कि अभी आधुनिक नाटक और नौटंकी के बीच कोई समन्वय है ही नहीं। उन सबने नौटंकी के प्रयोग तो किये, लेकिन बड़े-बड़े नामों के आगे नौटंकीकार घर दिये। दूसरे के राशनकार्ड पर जीने के इरादों ने न नौटंकी को नौटंकी ही रहने दिया ओर न आधुनिक नाटक को आधुनिक।

मुझे नहीं पता कि नौटंकी के ऐसे प्रयोगों के प्रति नौटंकी के कलाकारों की क्या प्रतिक्रिया है। इस बात पर वे नाराज हो सकते हैं कि नौटंकी का मजाक बनाया जा रहा है। मैं लोकनाट्यों के आधुनिक प्रयोगों के पक्ष में हूँ। इससे हमेशा पश्चिम की ओर भागने से थोड़ी फुर्सत मिलेगी। नौटंकी-तन्त्र के

प्रकाशित साहित्य का अभाव-सा है। संगीत तथा नृत्य के अलावा इस विषय पर तकनीकी पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

वैसे नौटंकी पर फिल्म बनाने या नौटंकी कलाकारों को उपाधि देने या उनकी रिकार्डिंग करने के काम अपनी जगह ठीक हो सकते हैं, लेकिन क्या यह नहीं हो सकता कि कम से कम एक बार हम नौटंकी के लिए रवीन्द्रालय का मोह छोड़ दें?

रंगमर्मी उर्मिल कुमार थापलियाल के बाद मुद्रा राक्षस ने अपने वक्तव्य में कहा-

नौटंकी का पिछले कुछ दशकों में कुछ अध्येता विद्वानों जैसे-जे.सी.माथुर, सुरेश अवस्थी आदि के कारण पुनर्निरीक्षण शुरू हुआ। धीरे-धीरे उसे एक सम्मानित नाटकीय विधा का दर्जा भी मिला। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक नाटककारों का ध्यान भी इस विधा की ओर गया।

चमन बग्गा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा दूसरे लोगों ने इसके कुछ अंशों का सार्थक प्रयोग अपने नाटकों में किया और इस आंशिक प्रयोग भर से ही उनकी रंग-रचनाओं में एक शक्ति पैदा हुई। लेकिन इस विधा का सर्वांग प्रयोग करने की दक्षता न किसी दूसरे नाटककार में है और ऐसा प्रयत्न किया गया।

स्वतंत्र रूप से नौटंकी की अपनी शर्तों को पूरा करने वाली नौटंकी किसी आध
ुनिक नाटककार के बस की है भी नहीं।

इसके बाद लोकनाट्‌य शिल्प के विद्वान अध्येता डॉ. सुरेश अवस्थी ने कहा–

मैं क्षमा चाहता हूँ कि मुझे जरूरी काम से जाना पड़ गया। श्री लाल जी ने वहॉ कोई मीटिंग कर रखी, थी और आने में देर हो गयी। मैं दो-तीन प्रबन्ध
ा सुन नहीं सका। इसका मुझे खेद है। इसलिए मैं संक्षेप में कुछ बातें कहना चाहॅूगा और बड़े असंमजस में हॅू कि कहॉ से शुरू करूॅ क्योकि मेरे ३०-३५ वर्ष इसी विषय में बीते है और नौटंकी में ही केरल के स्वांग, कथाकली या दक्षिण पूर्व एशिया के लोकनाट्‌यों में पिछले २०-२० वर्षों से पारम्परिक नाट्‌य रूपों को देख रहा हॅूं तथा उनका अध्ययन कर रहा हॅू और २५-३० वर्षों बाद लगा कि बिल्कुल किसी तरह से स्पर्श कर सका हॅू। उनकी समझ में बड़ा गहन विषय है और बहुत सार्थक मैं मानता हॅू और विशेष नौटंकी को लेकर मैं यहा क्षमा कर दें, क्योंकि मैं बहुत ही जुड़ा रहा नौटंकी से इसलिए सारी चर्चा में कहीं-कहीं जिक्र आ जायेगा मेरे अपने कार्य का या मेरे नाम का उसके लिए क्षमा चाहता हॅू अति विनम्रता के साथ।

सन्‌ ६०-६१ में मैं बहुत ही संक्षेप में थोड़ा इतिहास बताना चाहता हॅू,

दिल्ली में था भारतीय नाट्य संघ का अवैतनिक सचिव और अंग्रेजी में नाट्य-पत्रिका निकलती थी उसका सम्पादक था। तो उस समय मैं समझता हूँ कि पहला अवसर था और मेरे साथ थे सहयोगी मोहन उप्रेती, जिनका काम है विशेषकर अवधी क्षेत्र के नाट्य-रूपों में लोकगीत में और इन्द्र राजठान थे। तब हम लोगों ने सोचा कि वह जो फिरोजशाह कोटला में हम लोगों ने तीन-चार दिन का लोकनाट्य-समारोह का और दिल्ली में होना बड़ी वैसी बात थी। सारे थियेटर के सर्किल में, कल्चर के सर्किल में लोगों ने बहुत नाक-भौं सिकोड़ी कि बड़ी प्रतिक्रियावादी बात है, बड़ी ही देहाती बात है, बड़ा घटिया काम है। मेरी यही नियति रही कि मैंने बराबर परम्परा का सवाल उठाया है विशेषकर रंगमंच के क्षेत्र में और बहुत गालियां भी मिली है। मुझे परम्परावादी कहा गया।

एक सेमिनार हुआ था कलकत्ते में, मेरा 'धर्मयुग' में लेख नाट्यशास्त्र और उसकी प्रासंगिता भी छपा था। इतना मैं अपनी सफाई में कह देना चाहता हूँ कि जब-जब मैंने परम्परा की बात उठायी, चाहे नौटंकी हो चाहे नाट्यशास्त्र हो, हमेशा उनकी प्रासंगिकता की बात की। मैं नाटक के क्षेत्र में या कला के किसी क्षेत्र में परम्परा का प्रश्न बिल्कुल बेकार मानता हूँ, अगर वह आपके क्रियात्मक सूचनात्मक काम से जुड़ा हुआ नहीं है। वही उसकी सार्थकता है।

हमारी परम्परा पूज्य है, इस भाव से मैंने कभी नहीं कहा। यहॅा तक कलकत्ते में जो सेमिनार हुआ, नाट्यशास्त्र पर बड़े-बड़े और विद्वान आये थे नाट्यशास्त्र की प्रासंगिकता की जिस बिन्दु से, जिस स्तर से सार्थकता की बात उठाता हूँ वह शायद आपको भी स्वीकार नहीं होगी। जितना प्रासंगिक है, चाहे वह नाट्यशास्त्र का १००वां, १०००वां हिस्सा हो, वह मान् है सार्थक है।

नाट्यशास्त्र में जो मूल बातें कही गयी हैं अभिनयकला को लेकर, नाट्यकला को लेकर दुनिया के किसी ड्रामांटिक थियेट्रिकल कल्चर में उतनी ऊँची, उतनी गहरी बात नहीं की गयी। पिछले गर्मियों में पढ़ाने गया साउथ ईस्ट एशिया जो वहा एक कोर्स करा रहे थे 'नाट्यशास्त्र'। और आज से दो वर्ष पहले मैं जिन दिनों में पढ़ाने जाता था न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में। उस समयवहां १५ अमरीकी विद्यार्थी थे। कोर्स था 'सेमिनार ऑन नाट्यशास्त्र' और हर एक के पास मनमोहन देव का अंग्रेजी ट्रांसलेशन था। उसमें जो लिखा है उसका १०००वां हिस्सा कह रहा हूँ। वह जो १०००वां हिस्सा है वह इतना मॉडर्न, इतना कनटेम्पोररी है कि बड़े से बड़ाउ दुनिया का डायरेक्टर भी, वो ग्राताव्स्की हो या पीटर ब्रुक उसकी कन्सल्ट करते है, उसे देखते हैं।

तो मैंने सन् ६०-६१ में यह लोकनाट्य-समारोह दिल्ली में किया। लोकनाट्य-समारोह में कानपुर से एक नौटंकी पार्टी गयी थी। एक जात्रा और

एक माच मतलब तीन फार्म थे। तो उस वक्त यह पहला इस तरह का प्रयोग था जिस बात की हम चर्चा करते हैं।

तो जब नौटंकी की बात आयेगी तो जैसे मैंने पहले ही कह ा, उसका एक महत्व है, उसका पुनरुत्थान, उसकी विकृतियां गौण है। उस समय भी वही च र्चा थी। यह सवाल बार-बार उठाया गया है 'अभी दिल्ली में एक सेमिनार हुआ था। उसमें भी यह सवाल उठाया गया है कि हमारी जो पारस्परिक कलायें है, उनको 'रिवाइज' होना चाहिए। सवाल यह पैदा होता है कि रिवैलिडेट कौन करेगा? एकेडमीज करेंगी, गर्वनमेन्ट्स करेंगी, पॉलिटिकल अथार्टीज करेंगी, कोन रिवैलिडेट करेगा? इस पर मेरी उनसे बहुत ही बहस हुई। मैंने कहा, कम्युनिस्ट सिस्टम्स मे ऑपेरा बड़ा भारी ट्रेडिशनल फॉर्म है। जिस तरह से हमारा 'यक्षगान' वगैरह है। उसमे ंभी १६६० में माओ की बीवी ने इन्टरफियर किया और उसके सहारे पॉलिटिक्स इम्पोज की, थीम बदल दिये, नाटकों के अंग बदल दिये, उसमें कुछ वेस्टर्न म्यूजिक डाल दिया, कुछ वेस्टर्न वैले के मूवमेण्ट डाल दिये। यह सवाल बड़ा क्रूशियल है, नाजुक है कि उनकी सार्थकता कौन तय करे? एकेडमीज करेंगी, सरकार करेगी, या कोई पॉलिटिकल राजनीतिक विचारधारा करेगी?

मेरी अपनी धारणा यह है कि इन कला-रूपों में, नाट्य-रूपों में इनबिल्ट

एक एइसथेटिक स्कीम है। एक उनकी ऐसी योजना है कि वह अपने आप हर जेनेरेशन में अपने ढंग से परिवर्तन करके रिवैलिडेट करते रहे हैं और वह स्वीकार्य होता है। नौटंकी तो एक सैक्युलर और सोशल फॉर्म है। एक फॉर्म है, 'दशावतार', बिल्कुल रिलीजिसय फॉर्म है। उसमें सिर्फ दस अवतारों का इनेक्टमेण्ट होता है। अवतार का प्रवेश हुआ, गाना गाया, कुछ अभिनय हुआ फिर नरसिंह का गायन हुआ। यह डायमेन्शन है हमारे थियेटर का।

प्रसिद्ध पखवजवादक स्वामी पागलदास ने ताल पर विशेष जोर देते हुए कहा-

आप लोगों के बीच में तो हमें बोलने में बड़ी कठिनाई-सी महसूस हो रही है। बातों को सुनते-सुनते बहुत सी बातें दिमाग में आयीं। कहाँ तक वो बातें दिमाग में आयें और कहाँ तक वो बातें मैं आपके सामने कह सकूँ, यह तो मैं निश्चित नहीं कह सकता पर इतना मैं अवश्य कहूँगा कि आज में संगीत के क्षेत्र में पखवज वाद्य के द्वारा जाना जा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि सन् ३५ से सन् ६० तक थियेट्रिकल कम्पनियों से जुड़ा रहा। उसमें छोटी-से-छोटी, बड़ी-से-बड़ी जिनमें १००,८०,६० आदमियों तक का वैच रहता था, गाना, बजाना, परर्दा, जिसे पारसी थियेटर कह सकते है और उनके माध्यम से नौटंकीवालों को देखने का अवसर मिला। मैंने गुलाब लान की नौटंकी देखी।

श्री त्रिमोहन जी की नौटंकी देखी। ये नम्बरदार थे और ये श्रीकृष्ण पहलवान।

अब हमको यह देखना है कि नौटंकी किस पृष्ठभूमि के आधार पर खड़ी हुई है। पारसी थियेटर के नाटकों के अपने कुछ दायरे थे। डायलॉग बोलने में तुकान्त का प्रयोग बहुत ज्यादा होता था। स्वरों के चढाव-उतार के माध्यम से ड्रामा बोलने की पारसी थियेटरों में एक प्रथा रही और उनको बड़े महत्वपूर्ण ढंग से लोग स्टेज पर करते थे और उसमें उनकी ट्रेनिंग होती थी। उसकके दो-एक डायरेक्टर के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। नौटंकी क्यों बनायी गयी? मेरे दिमाग में एक बात आयी है कि नाटक की बहुत सी बातें जनसाधारण के मस्तिष्क में न आने के कारण कुछ लोगों को चाहे वो नत्था राम हो या उनके पहले इन्दरमन का नाम अ ाता है या इनसे पहले कोई और भी सज्जन हों जिन्होंने यह सोचा कि लोक-जीवन में और निकट जाने के लिए नौटंकी का एक माध्यम चुने।

नौटंकी की नायिका : पद्मश्री गुलाब बाई

गुलाबबाई का जन्म आज से लगभग ६५ साल पहले यानी सन् १६२६ में फर्रुखाबाद जिले के वलपुरवा गांव में एक गरीब हिन्दु परिवार में हुआ था, पिता का नाम था लालबहादुर। कुल दस सन्तानें थीं-चार लड़के और छः लड़कियाँ। आमदनी का कोई खास जरिया नहीं था। बहुत मुश्किल से घर का खर्च चलता था। लेकिन इन बच्चों में खाने-पहनने को लेकर आपस में लड़ने-झगड़ने की आदत नहीं थी, बल्कि जो कुछ थोड़ा-बहुत रूखा-सूखा मिल जाता था, उतने से ही सन्तोष कर लेना स्वभाव बन गया था। तब आज की गुलाब बाई का बचपन था और पास-पड़ोस गाँव-घर वाले इन्हें गुलाबो, और गुलबिया जैसे कई घरेलू नामों से जानते-पुकारते थे। रंगरूप भी देशी चैती गुलाब जैसा ही था और स्वर की मिठास का तो कहना ही क्या? कभी-कभार छोटे भाई-बहिन जब भूख से बहुत परेशान होते थे तो गुलबिया उन्हें मीठे-मीठे गीत-भजन बड़े मन से सुनाती थी। भाई-बहिन अपनी भूख-प्यास भूल जाते थे और एकटक गुलबिया की ओर निहारने लगते थे। गुलबिया जानती थी कि स्वर का यह आकर्षण टिकाऊ नहीं है; कुछ ही देर बाद इसमें भी सब ऊब जायेंगे

तब क्या होगा?

तब क्या होगा? और तब क्या होगा? सबसे बड़ी सन्तान होने के कारण वह असमर्थ हो हुए भी पिता के माथे की रेखाओं को बहुत गौर से देखती थी और उसे पढ़ने की भी कोशिश करती थी। लेकिन कैसे हाथ बटायें यह नहीं सोच पाती थी-फिर भी भीतर ही भीतर छटपटाती थी-दारिश और बादलों की प्रतीक्षा में जेठ-वैसाख की नदी की तरह। इन्हीं दिनों एक संयोग भी हाथ लगा। जैसे अन्धे तहखाने में उतरने के लिए सीढ़ी न सही सीढ़ी का नक्शा मिला गया हो। हुआ ये कि उन्हीं दिनों मकनपुर का मेला लगा हुआ था और उस मेरे में तिरमोहन लाल जी की मशहूर नौटंकी पार्टी आई हुयी थी। आसपास के कई जिलों में तिरमोहन लाल का बड़ा नाम था। गाँव-देहात वाले मेलों-ठेलों और आस-पड़ोस की बारातों में तिरमोहन लाल के नाम पर टूट पड़ते थे। गुलबिया भी तिरमोहन लाल की नौटंकी देखने-सुनने का मन बना चुकी थी। उसने अपने पिता से कहा कि मैं मकनपुर का मेला देखना चाहती हूँ। वह जानती थी कि पिता तिरमोहन लाल की नौटंकी के दीवाने हैं। उसकी बात मान ली गयी और वह अपने पिता के साथ मकनपुर के मेले आ गयी। दर्शकों में बैठकर उसने नौटंकी देखी। जब नौटंकी खत्म हो गयी तब उसने आग्रह किया कि पिताजी मैं भी नौटंकी करूंगी, मैं भी गाऊँगी, मुझे तिरमोहन लाल जी से

मिलवा दीजिए...'। यह सुनकर पिता अवाक् रह गये। बहुत देर तक वह गुलबिया का सिर्फ मुँह ही देखते रहे। वह कुछ सोच नहीं पा रहे थे कि बिटिया को क्या जवाब दें? एक बार तो उन्होंने साफ-साफ इनकार कर दिया लेकिन लड़की भी अपनी जिद पर अड़ी रही। फिर तिरमोहन लाल जी ने गुलाब का गाना सुना। उनकी ऑखों में अपनी पार्टी का उज्ज्वल भविष्य दिखाई देने लगा। अन्ततः यही तय हुआ कि गुलाब अब तिरमोहन लाल जी के यहॉ कानपुर में रहेगी और गाना सीखेगी। पचास रुपया महीना वेतन भी तय हो गया। इसके अलावा आवास और भोजन भी। पूरी पार्टी एक साथ ही रहती थी और सबका खाना एक साथ बनता था। उन दिनों अट्ठाइस रुपये तोला सोना था-दो रुपये सेर देशी घी था- एक रुपया सेर सरसों का तेल था और एक रुपये में ही सोलह सेर गेहूँ मिलता था। तनख्वाह पूरी की पूरी बच जाती थी जिसे गुलबिया अपने घर भेज देती थी। पूरे परिवार का खर्च अब बड़ी आसानी से चलने लगा। गुलबिया अब गुलाब बाई बन गयी। तिरमोहन लाल की नौटंकी मण्डली में सुर्खाब के पर लग ये। मॉ भी बढ़ गयी गयी और कीमत भी।

उन दिनों नौटंकी की कल चार मण्डलियॉ थीं। पं. नत्थाराम शर्मा की नौटंकी मण्डली, लालभन लंबरदार की मण्डली, पहलवान श्रीकिशन लाल की मण्डली और तिरमोहन लाल की नौटंकी मण्डली। इन चारों मण्डलियों में सबसे

ज्यादा आकर्षण था तिरमोहन लाल की मण्डली में, क्योंकि इसमें गुलाब बाई थी। इससे पहले किसी भी नौटंकी पार्टी में कोई महिला कलाकार है। इनके पहले नौटंकी में स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष ही किया करते थे और भीड़ उन्हीं महिला बने पुरुष कलाकारों (लौंडों) पर जान छिड़कती थी। लेकिन कुछ ही वर्षों में गुलाब बाई ने नौटंकी का बाजार अपने हाथ में ले लिया। भीड़ लट्टू हो गयी। तिरमोहन लाल की नौटंकी के नाम पर लोग खेत-खलिहान छोड़कर भागते थे-सेठ साहूकार दुकान का हिसाब-किताब भूल जाते थे और बड़े-बड़े नामी-गिरामी जमींदार और रईस लोग हफ्तों अपने-अपने गाँव-घर-शहर-कस्बों में तिरमोहन लाल की नौट।की करवाते थे। कहीं-कहीं तो बीस-बीस हजार की भीड़ सूर्योदय तक बैठी रह जाती थी। इस भीड़ में स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ, बूढ़े-अधबूढ़े, सब शामिल रहते थे। उन दिनों नोटों का चलन बहुत कम था। ज्यादातर लोग इनाम में चांदी के सिक्के ही उछाल कर फेंकते थे-सीधे स्टेज पर। बहुत से दिलफेंक ऐसे थे जो रुपयों से भरा हुआ पूरा का पूरा बटुआ अपने नाम-पते के साथ झम से स्टेज पर फेंक देते थे, और उन बटुओं में पैसों के साथ-साथ अपने प्यार का प्रस्ताव भी लिखकर रदख देते थे। नौटंकी का सीधा असर दर्शकों पर पड़ता था। न जाने कितनी ब्याही-अनब्याही महिलाएँ ऐसी नौटंकियों के चलते अपने-अपने यारों के साथ

भाग गयीं। न जाने कितनी कुलवधुओं को अपने-अपने पतियों से हाथ धोना पड़ा; कितनों को कितनी-कितनी सौंतों का सामना करना पड़ा इन्हीं नौटंकियों के चलते। तिरमोहन लाल की नौटंकी के नगाड़े की आवाज कोस भर में गूंजती थी और लोग बेसुध होकर दौड़ पड़ते थे।

जैसे दौड़ पड़ते हैं सॉप का मन्त्र जानने वाले गुजार सुनकर। तब उन दिनों नौटंकी के अलावा जन साधारण के मनोरंजन का और कोई दूसरा साधन भी तो नहीं था, और सोने में सुहागा थी गुलाब बाई। ऐसी धूम मची ऐसी धूम मची कि भीड़ पर काबू पाना मुश्किल हो गया और कानपुर के अंग्रेज शहर कोतवाल ने गुलाब बाई और तिरमोहन लाल को रातोरात जिला बदर कर दिया। ये लोग फिर कन्नौज आ गये और तब तक रहे जब तक देश आ जाद नहीं हो गया। पिछले कई वर्षों के लगातार अभ्यास ने गुलाब बाई को और निखारा, और चमकाया। बीस-बाइस की उम्र, छरहरी देह, बोलता पानी, तीखा नक्शा और उस पर पाटदार मीटी आवाज-सबने गुलाब बाई को हाथों-हाथ उठा लिया और दुबारा जब गुलाब बाई कानपुर आयीं तो शहर का आईना हो गयी। लेकिन इस आईने में भी निरन्तर एक पुरुष छवि कन्नौज के सेठ की रची-बसी दिखाई देने लगी और बहुत दिनों तक वह छवि गुलाब बाई की ऑखों में, सॉसों में और बातों में छायी रही, और धीरे-धीरे जब जी भर

गया तो वह छवि अपने आप इस आईने से अलग हट गयी और ओझल हो गयी। ऐसे रिश्तों के साथ अक्सर यही होता आया है। गुलाब बाई ने भी उसे भूलने में ही अपनी भलाई समझी। जैसे बाढ़ का पानी अपना निशान छोड़ जाता है उसी तरह से एक निशानी यहाँ भी रह गयी।

गुलाब बाई ने वैसे तो बहुत सी नौटंकियों में काम किया लेकिन कुछ नौटंकियाँ ऐसी भी रही जिनकी भरपूर छाप दर्शकों पर पड़ी और गुलाब बाई के सफल अभिनय ने उन्हें और सरस और सार्थक बना दिया। गुलाब बाई ने सबसे पहले आलमआरा में काम किया। फिर लेला-मजनू, शीरी-फरहाद, सुल्ताना डाकू, अमर सिंह राठौर, पुकार, औरत का प्यार, बहादुर लड़की और सत्यवादी हरिश्चन्द्र। लेकिन सबसे ज्यादा उन्हें शोहरत मिली सत्यवादी हरिश्चन्द्र नौटंकी में महारानी शैव्या का अभिनय करने से। हजारों की संख्या में दर्शक आँसू पोंछते रह जाते थे, औरदतें फूट-फूटकर रोने लगती थीं। भीड़ नौटंकी और उसके चरित्रों में बंधी रहती थी, जुड़ी रहती थी। यही कलाकार की सफलता होती थी। एक तो कथानक ही अपने आप में इतना आकर्षण और सम्पूर्ण होता था कि दर्शक मंत्रमुग्ध की तरह बस स्टेज निहारता रहता था। दूसरे, मन से किया गया अभिनय भी दर्शकों के बीच सीधे-सीधे अपनी जगह बना लेता था। और तीसरा कारण था, नौटंकी का सरस होना-तरह-तरह के

बहरे तबील, लावनी, गजल, दादरा, कहरवा, पूर्वी झूमर आदि-आदि। फिर भी सारा श्रेय कलाकार को ही दिया जाता था। कोई भ्ज्ञी नौटंकी पूरी तरह तैयार करके प्रदर्शित करने में लगभग तीन महीने का समय ले लेती थी। और गुलाब बाई को लगातार आठ-आठ घण्टे दस-दस घण्टे रियाज करने पड़ते थे तब कहीं पाठ याद होता था और जनता के समझ प्रदर्शित करने से पूर्व रिहर्सल के तौर पर उसके दो-तीन सम्पूर्ण प्रदर्शन होते थे बिना प्राम्पटिंक के। उन दिनों की भाग-दौड़ और मेहनत मशक्कत की आज जब गुलाब बाई याद करती है तो सहसा खिल उठती है। कितनी ललक थी, कितनी उमंग थी, औरउ कैसा हौसला था-बिना खाये-पिये दिन-दिन भर, रात-रात भर रिहर्सल चलती थी कहीं ये गाड़ी पकड़ों तो वो छोड़ों की चिन्ता लिए-लिए बैलगाड़ी में चलते-चलते थक कर सो जाने की नौबत आ जाती थी। उन दिनों सचमुच जीने में बड़ा रस था। उम्र भी थी, लोग भी थे और जरूरत भी थी। अब तो मन भी नहीं होता और दिमाग भी ठीक-ठीक काम नहीं करता बहुत सोचने, जोर डालने पर मुश्किल से सैकड़ों बार खेली गयी नौटंकियों के संवाद याद हो पाते हैं। औरत का प्यार बहादुर लड़की नौटंकी का एक चौबोला जिस समय अपने ड्राइंगरूम में गुलाब बाई ने स्वर लहराकर हवा में उछाला उस समय उनकी बहुएं, बेटियॉ और तमाम सीखने वाली उनकी शिष्याएं दौड़ी चली आयी। अभी भी इस गले

में बहुत दमखम है-फल बेंचने वाली से सरकारी सिपाही मुफ्त फल ले लेते हैं और कीमत माँगने पर पैसा नहीं देते-ऐसे सिपाहियों को धिक्कारती और ल लकारती हुई वह फल बेचने वाली कहती है-

''नहीं बादशा ने दिया एक तुमको अधिकर

बिला खता तुम इस तरह रैयत डालो मार

रैयत डालो मार जब हो उसका माल तुलाओ

कीमत माँगे तो कोड़े से उसकी खाल उड़ाओ

बातें करते बेशरमी की तुम जरा हीं शरमाओ

चंद पैसों के लिए हुकूमत को बदनाम कराओ।।''

लगभग बीस-बाइस वर्षों तक तिरमोहन लाल की नौटंकी में काम करने के बाद और पूरी शोहरत हासिल करने के बाद गुलाब बाई ने अपना कारोबार स्वतंत्र रूप से शुरू किया। इन्हीं दिनों चण्डीगढ़, पंजाब के बलवीर उत्तर प्रदेश के कुछ खास-खास शहरों में टूरिंग सिनेमा का धन्धा शुरू किये हुए थे। एक बार वह कानपुर में ही गुलाब बाई से मिले। दोनों ने एक-दूसरे को देखा-परखा और मन ही मन एक-दूसरे के प्रति समर्पित होने का बचन भी लिया। गुलाब

बाई की जिन्दगी में जो एक अनतराल सा आ गया था वह अब बहुत कुछ भरता हुआ सा दिखाई देने लगा-काफी हद तक भरा भी बेटे-बेटियों की संख्या बढ़ गई। गृहस्थी का सम्पूर्ण सुख मिलता रहा-मिलता ही रहा। सहसा बलबीर सिंह भी टूरिंग सिनेमा का धन्धा बन्द करके अपने पंजाब वापस चले गये और वहीं चण्डीगढ़ में अपने पहले के परिवार और बाल-बच्चों के साथ रहने लगे। न वह फिर कभी गुलाब बाई से मिलने आये और न गुलाब बाई को उन्होंने कभी अपने यहॉ बुलाया। यह कसक कहीं न कहीं गुलाब बाई के मन में बहुत गहरे समायी हुई है-कोई भी बाई आखिर सम्पूर्ण पत्नी कब होगी? उसने तो अपने को उसी तरह समर्पित किया फिर यह छलावा कैसा? इसके लिए वह कहाँ जिम्मेदार है? लेकिन वह जानती है, यहीं सनातन होता आया है और होता रहेगा। उसे पत्नी बनने का दण्ड-सम्मान नहीं मिलेगा। यही हमारी सामाजिक व्यवस्था है।

आज गुलाब बाई के पास सब कुछ है-किदवई नगर, कानपुर में कई लाख की बिल्डिंग है, कार है-ऐशोआराम के सारे सामान है। लाखों का बैलेन्स भी है-बेटे भी नौकरी में हैं, बेटियॉ भी अच्छे परिवारों में ब्याही है और छोटे-बड़े नाती-पोते भी आसपास गुंथे रहते हैं। भारत सरकार ने उन्हें जनवरी नम्बे में पद्मश्री से सम्मानित भी किया है। राष्ट्रीय स्तर पर जानी जाने वाली गुलाब

बाई फिर भी भीतर से टूटी हुई दिखाई देती हैं सिर्फ इसलिए कि जिस नौटंकी को उन्होंने पूरी जिन्दगी सौंप दी आज उस नौटंकी की अस्मिता खतरे में है। इसी नौटंकी के चलते उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार ने भी सम्मानित किया और पुरस्कत किया, इसी नौटंकी के चलते माननीय राष्ट पति महोदय श्री आर. वेंकटरमन जी जब उपराष्ट्रपति थे तब उन्होंने गुलाब बाई का नागरिक अभिनन्दन मद्रास में कराया था और उन्हें दस हजार रुपये का पुरस्कार भी दिलाया था। वह दिन गुलाब बाई भूली नहीं है जब उन्होंने आलाप देकर गाया था-'नदी नारे न जाओ श्यमा पइयाँ परूँ-समा बाँध दिया था। भाषा की समस्या दर्शकों-श्रोताओं के सामने थी लेकिन दुभाषिये के माध्यम से गीत का संवेदन से भीड़ जुड़ी हुई थी और जिस समय गुलाब बाई ने अपना कार्यक्रम समाप्त किया तो बहुत देर तक वातावरण में प्रशंसा के अभिवादन में दर्शकों की तालियाँ बजती ही रही, उन क्षणों को जब भी गुलाब बाई याद करती है, तो रोमांच सा हो आता है और आँखें प्रसन्नता से भीग उठती है, लेकिन जैसे ही उन स्मृतियों से अलग और चैतन्य होती है वह नौटंकी के भविष्य के बारे में सोचने लगती है। उनका सोचना सही भी है क्योंकि आज समाज के सामने मनोरंजन के बहुत से साधन हो गये हैं और ये साधन सस्ते भी हैं। ऐसे वातावरण में नौटंकी को कौन पूछता है? दिनोदिन वह नक्कारखाने में तूती की

आवाज साबित होती जा रही है। क्या इसी के लिए गुलाब बाई ने इतना बड़ा जोखिम उठाया? अपने को पूरी तरह से दांव पर लगाया क्या इसी दिन के लिए? कभी महीने-महीने भर नौटंकी होती रहती थी-अब साल में कभी कभार हो जाती है छुड़ाने के लिए। पहले शादी-ब्याह और सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सवों-पर्वों पर नौटंकियां धूम मचाये रहती थी अब कोई नौटंकी को घास नहीं डालता। आज पूरे देश-प्रदेश में नौटंकी से जुड़े हजारों कलाकार भुखमरी के कगार पर खड़े हैं उनके और उनके बाल-बच्चों के सामने प्रश्न चिह्न लग गया है कि कल कहॉ रहोगे? लेकिन उत्तर किसी के पास नहीं हैं। और सचमुच अगर सही उत्तर नहीं दिया गया तो यह कला हमारे बीच से आने वाले वर्षों से उठ जायेगी। इसका कोई नामलेवा नहीं रह जायेगा। इसलिए आवश्यक है कि कुछ ऐसा मिलाजुला प्रयास हो जिससे नौटंकी कला की मर्यादा भी बनी रहे, माँग भी बनी रहे, उसका आकर्षण बना रहे और नौटंकी मरे नहीं, वर्ना गुलाब बाई को भी लोग धीरे-धीरे भूल जायेंगे। गुलाब बाई आज इसी चिन्ता में पड़ी हुई है-

अरमानों का हुजूम मेरे दिल में रह गया

थक करके काफ़िला इसी मंजिल पे रह गया।।

नाट्यानुभव

उल्लेखनीय है, गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरित मानस के उपरान्त अनेक समकालीन उत्तरकालीन कवियों ने अपने आराध्य भगवान् श्री राम की कथा को अपने भावानुरूप शब्दों-छन्दों में बांधने का प्रयास किया जिनका उल्लेख सांकेतिक रूप में इस प्रकार कर सकते हैं-आचार्य कवि केशवदास कृत इस प्रकार कर सकते है-आचार्य कवि केशवदास कृत रामचन्द्रिका, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत, और पं. राधेश्याम कथावाचक रचित राधेश्याम रामायण। रामकथा पर कलम चलाने वाला कोई भी साहित्यकार ऐसा नहीं मिलता, जिसे अमरत्व न प्राप्त हुआ हो-इस विचित्र सत्य की अभिव्यक्ति गुप्त जी ने निम्नवत् साकेत में की है-

राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

लोकप्रियता और प्रचार की दृष्टि से तुलसी के बाद पं. राधेश्याम द्वारा रचित 'रामायण' को उत्तर भारत में सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ जिसका पाराण आज भी अनेक घरों में किया जाता है तथा अनेकानेक संस्थाओं द्वारा

मंचस्थ की जाने वाली रामलीलाओं में नाटकीयता की वृद्धि करने के उद्देश्य से भी इस रचना का सर्वाधिक उपयोग होता है।

हिन्दू-उर्दू मिश्रित सरल-सुबोध जन भाषा नाटकीय प्रसंगों एवं पारसी शैली के संवादों से युक्त अपनी इसी 'रामायण' के बल पर पं. राधेश्याम जी ने जयपुर-नरेश सवाई माधवसिंह के दरबार में पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया था-और इसी दरबार के माध्यम से उन्होंने पारसी नाट्य-संसार में प्रवेश किया, यह तथ्य विशेष महत्वपूर्ण है जिसकी स्वीकारोक्ति पंण्डित जी ने स्वयं की है।

आम तौर पर पारसी-हिन्दी रंगमंच का आगा मुहम्मद शाह 'हश्र' काश्मीरी, पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' पं. राधेश्याम कथावाचक को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई।

इन तीनों ही नाटककारों ने पारसी-हिन्दी रंगमंच को अपनी अलग विशिष्टता प्रदान करते हुये जिन तीन प्रमुख धाराओं का समावेश किया, वे हैं-

१. रूमानी प्रवृत्ति

२. पौराणिक प्रवृत्ति, तथा

३. पुनरूत्थानवादी प्रवृत्ति

उल्लेखनीय है कि ये तीनों प्रवृत्तियां परस्पर भिन्न नहीं है, अपितु शैली के हर नाटक में कामोवेश उपलब्ध हो जाती है; परन्तु विरुद्ध रूप से इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व पूर्वाक्त नाटकारों द्वारा किया गया मिलता है।

पारसी रंगमंच पर मूलतः उर्दू भाषा का अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ था जिस पर हिन्दी का रंग चढ़ाया बेताब ओर राधेश्याम ने। यह रंग कुछ ऐसा चढ़ा कि आगरा हश्र जैसे नाटककारों ने भी भारतीय पौराणिक व धार्मिक कथानकों पर आधारित हिन्दी भाषा के शब्द-बहुत नाटकों की रचना पर श्रेय हासिल किया। माधुरी वर्ष ८ अंक ६ में नाटक-प्रेमी के नाम से प्रकाशित मुंशी प्रेमचन्द्र के एक लेख में इस योगदान की चर्चा इस प्रकार की गई।

इसके बाद राधेश्याजी का वीर अभिमन्यु आयक। हम समझते है कि इससे पहले इतने हिन्दीत्व का कोई नाटक पारसी कम्पनियों के स्टेज पर नहीं आया। इस नाटक का हास्यवाला भाग कामिक भी बड़ा िक्षप्रद और अ लीलता से रहित था....खैर, वीर अभिमन्यु को पूर्ण सफलता मिली, महामना मालवीय जी तक ने इसे देखा और प्रशंसा की। इतना ही नहीं, जनता ने भी इसे देखा और उतना आदर दिया, जितना आदर इससे पहले के पारसी कम्पनियों के किसी नाटक को प्राप्त नहीं हुआ था।.......राधेश्यामजी ने 'वीर अभिमन्यु' के बाद जो नाटक श्रवण कुमार लिखा था, वह इसी (सूरविजय) कम्पनी को दिया था।

'श्रावणकुमार' के बाद भी कई नाटक इन्होंने उस कम्पनी को दिये थे।...हॉ, तो न्यू अल्फ्रेड कम्पनी के हमने कितने ही नाटक स्वयं देखे है।...उस समय हिन्दी नाटकों की दृष्टि ही से नहीं, स्टेज की दृष्टि से भी यह कम्पनी आदर्श है। श्रीयुत राधेश्याम जी, जिनके नाटक इस कम्पनी में खेले जाते हैं......निःसन्देह सफलता प्राप्त कर रहे है। ''वीर अभिमन्यु'' के अतिरिक्त राधेश्याम जी के प्रहलाद, परिवर्तन, मशरिकी हूर आदि सब वर्क एक से एक उत्तम हैं।

उपर्युक्त नाटकों का भारतीय जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। 'रूक्मिणीमंगल' के बाद राधेश्यामजी की अगली रचना ईश्वर-भक्ति थी। इसका उद्घाटन दिल्ली में कांग्रेस-प्रेसीडेन्ट पं. मोतीलाल नेहरू ने किया था। श्रीमती सरोजनी नायडू भी साथ थी। नाटक के प्रभाव का आकलन इस तथ्य से किया जा सकता है. ..श्रभी मोतीलाल जी नेहरू आये आध घण्टे को और अपनी पार्टी सहित बैठे रहे रात को दो बजे तक (माधुरी वर्ष ८ अंक ६-'नाटक प्रेमी)। इसके बाद की रचना द्रोपदी स्वयंवर है।

राधेश्याम जी की अन्तिम रचना सम्भवः बाल्मीकि है जिसके विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है, 'कुछ भी हो, 'बाल्मीकि' लिखने के बाद इतना तो मेरे हृदय को सन्तोष हुआ ही कि-इन्द्रसभा से शुरू होने वाला पारसी स्टेज अब 'महर्षि बाल्मीकि' तक आ गया है।

संक्षेप में पं. राधेश्याम कथावाचक पारसी हिन्दी रंगमंच के अनुपम नाट्य रत्न थे। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि हिन्दी का रंगमंच अपना हो, पूर्ण प्रतिष्ठित हो और अन्याय देशी-विदेशी भाषाओं के रंगमंच से आगे हो। उनकी यह अभिलाषा प्रस्तुत दुर्लभ निबन्ध मेरा नाटकीय जीवन और उसके कुछ अनुभव के अंत में व्यक्त हुयी है। यह लेख मुंशी प्रेमचन्द्र द्वारा सम्पादित हंस के आत्मकथा विशेषांक में प्रकाशित हुआ था जिसे अपने मूल रूप में शोधार्थियों एवं नाट्य-प्रेमियों के लिये यहां अविकल रूप में उद्धृत किया जा रहा है।

निबन्ध का मूल पाठ

सन् १६१० ईसवी से मुझे इस कला से प्रेम है। बरेली ही में-जहां मैं रहता हूँ पंजाब के स्वर्गीय बाबू नानक-चन्द्र की न्यू अलबर्ट कम्पनी आई थी। उनके रामायण नाटक का मुझे संशोधन करना पड़ा था। बात यह हुई थी कि उस कम्पनी ने अपना 'रामायण नाटक' स्वर्गीय जयपुर-नरेश सवाई माधवसिंह जी को हरिद्वार में दिखाया था। उन्होंने उसमे कुछ त्रुटियाँ बतलाई और उसी समय उक्त महारासज के प्राइवेट सेक्रेटरी रायबहादुर श्री अविनाश चन्द्र जी ने मेरा नाम मालिक कम्पनी को बताया कि उनसे शुद्ध कराइये-यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि उन दिनों जयपुर-दरबार के रत्नों पर मेरा खूब प्रभाव था; कारण कि मैं अपनी रामायण सुनाने प्रायः बुलाया जाता था-हुआ यह कि

बरेली में ही मैंने उनकी रामायण का संशोधन किया और वह लोगों को खूब पंसद आया। उन दिनों उस कम्पनी में वे ऐक्टर काम करते थे, जो आज नाटक के सितारे कहला रहे हैं; जैसे-मि.काबुली, मास्टर निसार और मि. रहीमबख्श, मास्टर रहमत, आदि। हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दू भाई बहुत ही थोड़े थे, जिनको मैंने 'रामायण' में लिया था।

इसके उपरान्त बम्बई की न्यू अलफ्रेड थिएट्रिकल कम्पनी बरेली आई और उसके मालिक ने खास तौर पर मुझे एक हिन्दी नाटक लिखने के लिये उत्साहित किया। मैंने उनके उत्साह दिलाने पर वीर अभिमन्यु लिखा। उस समय मैंने यह इरादा कर लिया था कि पूर्ण हिन्दी का नाटक लिखकर दूँगा। और यही हुआ भी। तब से आज तक हिन्दी का कोई ऐसा नाटक नहीं निकला, जिसमें हिन्दी का इतना प्राधान्य हो। इस नाटक की सफलता के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि महामना मालवीय जी तक ने देखकर इसकी प्रशंसा की, पंजाब-यूनिवर्सिटी के 'हिन्दी भूषण' और इण्टरमीडिएट क्लासों के कोर्स में होने का इसे मान मिला। यह मान आज तक पारसी मंच के किसी नाटक को भी नहीं मिला। है। इसी को सामने रखकर पिछले वर्ष मेरे मित्र जौहरजी ने देश का लाल लिखकर मैडन थिएटर को दिया और उसके गानों की पुस्तक में इसका हवाला दिया, तथा इसी प्लाट पर अब बम्बई की किसी कम्पनी ने टाकी

में भी 'वीर अभिमन्यु' निकाला है।

हिन्दी के पत्रों ने उस समय इसकी खूब प्रशंसा की थी। पूज्य द्विवेदी जी ने सरस्वती में अमरशहीद विद्यार्थी जी ने प्रताप में प्रोफेसर इन्द्रजी ने विजय में, पं.कृष्णकान्त जी ने अभ्युदय में कहां तक गिनाऊँ। सभी विद्वान कृपालुओं ने अपने-अपने पत्रों में इसकी प्रशंसा करके मुझे प्रोत्साहित किया। इसी सफलता के कारण इस जगत में मेरी पूर्ण ख्याति हो गई और तब सूर विजय नाटक लिखवायें और गंगावतरण, सीता-बनवास आदि नाटक शुद्ध करवाये। 'न्यू अल्फ्रेड' वाले भला कब चुप रहने थे। उनके डायरेक्टर मि० सोराबजी-फ्रामजी ओग्रा ने -जिन्हें मैं आज तक पारसी स्टेज का सर्वश्रेष्ठ डायरेक्टर समझता हूँ-दूसरा नाटक लिखने को मुझे उत्साहित किया और मैंने प्रहलाद लिखकर दिया, जो तीन वर्ष तक बराबर उस कम्पनी में प्रत्येक शनिवार को खेला जाता रहा। उन दिनों इस कम्पनी में अच्छे काम करने वाले नट थे, जैस मि.भोगी लाल, मि.फूलचन्द्र मारवाड़ी आदि। आगे तो उक्त कम्पनी से मेरा वैतनिक सम्बन्ध हो गया। कम्पनी ने एक्ट ेसे नौकर नहीं रक्खी जाती थीं...स्त्री पार्ट भी पुरुष ही करते थे....और धार्मिक पार्ट ब्राह्मणों से ही कराये जाते थे; इसलिये सहर्ष उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया और क्रमशः परिवर्तन, शमरिबी हूर, श्रीकृष्णावतार, रूक्तिणीमंगल, श्रवणकुमार, ईश्वर भक्ति, द्रोपदी-स्वयंबर आदि

नाटक लिखकर अपने डायरेक्शन में स्टेज करायें; क्योंकि मेरे श्रद्धेय मि. सोराबजी ने अस्वस्थ रहने के कारण कम्पनी को छोड़ दिया था। यह सभी नाटक सफल रहे। 'परिवद्रन' लगातार नौ दिन तक दिल्ली में खेला गया था, श्री कृष्णावतार को तो पूज्य महामहोपाध्याय पं. गिरधरजी शर्मा और भाई हरिहरस्वरूप शास्त्री बी.ए. व्याख्यान, वाचस्पति पं. दीनदयालुजी के सुपुत्र ने देखकर यह कहा-"यह सच्ची सनातन धर्म की सेवा है"। मुझे याद है कि दिल्ली में जब यह स्टेज होता था, तो टिकट की खिड़की पर पुलिस को पहुँचकर भीड़ का इंतजाम करना पड़ताथा, इसी एक नाटक की सफलता ने लाहौर में इम्पीरियल कम्पनी को 'मैडन' के हाथ बिकवा दिया। मेरे कृपालु मित्र बाबू प्रेमचन्द्र जी तो इस नाटक पर इतने मुग्ध हुये कि आपने इसके कुछ सीनो के ब्लाक बनवाकर प्रशंसा के साथ 'माधुरी' में एक पूरा लेख प्रकाशित किया था। बड़े अच्छे-अच्छे नटों ने इसमें काम किया था। सर्वश्रेष्ठ पार्ट नारद का होता था जिसके करने वाले मेरे प्रिय शिष्य पं. रामकृष्ण चौबे थे, जो आजकल मद्रास की किसी फिल्म कम्पनी में अच्छे वेतन पर काम कर रहे है। 'श्रवण कुमार' का तो प्रारम्भिक उद्घाटन करने विद्या-वाचस्पति प्रोफेसर इन्द्रजी-अमर संन्यासी श्रद्धानन्दजी के पुत्र पधारे थे-कैसा प्यारा था वह दिन? मेरे मित्र बाबू प्रवासीलाल वर्मा मालवीय (जो अब हंस के सहकारी सम्पादक है) मेरे साथ उस

कम्पनी में थे। यह ऐक्टर का हिन्दी उच्चरण ठीक कराया करते थे तथा प्रेस-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य किया करते थे।

'ईश्वर-भक्ति' नाटक उस कम्पनी का पूर्ण प्रकाशमान नक्षत्र था। पहले दिन इसका श्रीगणेश कराने स्वयं बैकुण्ठवासी राजर्षि पं. मोतीलाल जी नेहरू पध ारे थे। वह भी उस वर्ष, जिस वर्ष वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट थे। इतना बड़ा जनसमूह कभी किसी थिएटर में खुद मैंने आज तक नहीं देखा है-मुझे तब खड़े रहने को जगह नहीं थी-उस रात की इस नाटक की सफलता आज भी मेरी ऑखों में नाच रही है। ऐसी प्यारी रात फिर भी उन ऑखों में नाच रही है। ऐसी प्यारी रात फिर भी इन ऑखों को देखने को मिलेगी या नहीं, इसमें संदेह है। यहाँ यह कह देना परम आवश्यक है कि उस कम्पनी के मालिक मि. मेहर्बानजी-खुरशेदजी कपाडिया और मि. माणिक शाह-कोलाभाई बलसारा की मुझ पर पूर्ण कृपा थी, उसी कृपा का यह सुन्दर फल था, कि मैंने उस कम्पनी को पूर्ण हिन्दुत्व और हिन्दीत्व के पद पर पहुँचा दिया था, जहां उपर्युक्त बड़े-बड़े नेता, भरतपुर, जयपुर, कश्मीर टेहरी आदि के अनेकानेक नरेश तथा सनातन धर्म और आर्य समाज के महान् से महान् विद्वान सहर्ष पधारते थे और यह समझते थे कि-न्यू अल्फ्रेड' हमारी है।

अन्त में सन् १६३० में मेरा स्वास्थ्य भयानक रूप से खराब होने लगा,

खॉसी के साथ-साथ दमें का रोग लगा और मुझे बड़े दुःख के साथ ८५० रु. मासिक की नौकरी, मालिकान कम्पनी से प्रेमपूर्वक विदाई लेकर छोड़नी पड़ी। करीब डेढ़ वर्ष के आराम और चिकित्सा से अब मैं स्वास्थ्य अवश्य हूँ; पर यह नहीं कह सकता कि मेरा स्वास्थ्य फिर उतना बड़ा कार्य मुझसे करा सकेगा। यद्यपि पिछले मास 'मैडन थियेटर्स' की एक टाकी फिल्म के लिये एक ड्रामा शकुंलता मालिकान के आज्ञानुसार १५ दिन ही में सिखकर मुझे निकालना पड़ा है; परन्तु कह नहीं सकता कि कहॉ तक स्वास्थ्य मुझसे हिन्दी माता कीयह सेवा करा सकेगा। यह तो नाटकीय जीवन की कथा है और अनुभव यह है कि जिन्हें संक्षिप्त में मैं हंस के पाठकों को बताता हूँ-

१. वर्तमान नाटक कम्पनियों में तीन जातियों का प्रवेश हैं-पारसी, मुसलमान और हिन्दू; इसमें हिन्दू भाई प्रायः बम्बई प्रान्त के रहने व ाले हैं जिनकी मातृभाषा के अच्छे जानकार अधिकतर होते ही नहीं है, गुजराती और उर्दू उनकी मातृभाषायें हैं-यही कारण है कि बम्बई प्रान्त में गुजराती नाटकों का और इधर उर्दू नाटकों का जोर हैं; अतएव हिन्दी की पूर्ण सेवा तभी हो सकती है, जब हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों के युवक, नटों के रूप में वहॉ पहुँचकर कार्य करें। श्री नन्दकिशोर और मास्टर जगन्नाथ जो 'न्यू अल्फ्रेड' और अल्फ्रेड में श्रेष्ठ नट हैं, वे इसीलिये कि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त के है।

२. हिन्दू भावो के धार्मिक नाटक जो मेरे द्वारा ये मेरे मित्र बेताबजी, जौहरजी द्वारा पहुँचे है, इसका कारण जनता की माँग है, या बम्बई प्रान्तवासी होने पर भी उन हिन्दुओं का संयोग है-जो इस जगह काम कर रहे हैं। अहमदाबाद के आस-पास 'नायक' नाम की एक जाति है। कहा जाता है कि यह जाति ब्राह्मण है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि वर्तमान नाटक कम्पनियॉ इसी जाति के सहयोग के कारण बनी और चल रही है। इस जाति में जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक मानो नाटक का ऐक्टर बनने के लिये ही जन्म लेता है। इन लोगों के यहां यही एक धन्धा होता है-दूसरा नहीं। वर्तमान प्रख्यात न ट-श्री नर्मदाशंकर नायक-मैडन थिएटर में काम करने वाले तथा दूसरे नर्मदशंकर नायक-न्यू अल्फ्रेड में काम करने वाले इसके अतिरिक्त स्वनामधन्य अमृत लाल और बालाभाई इसी जाति के रत्न है। यदि यह भाई हिन्दी के पूर्ण शिक्षित बन जायं, तो निःसन्देह स्टेजो की हिन्दी अत्यन्त शीघ्र और बड़ी आसानी से खिले हुये पुष्प की तरह महक उठे। मैंने अब तक इस जाति में एक ही ऐसे व्यक्ति को पाया है जो हिन्दी के पूर्ण ज्ञाता तथा पूर्ण भक्त है, वे हैं उपर्युक्त नर्मदाशंकर नायक जो मैडन थियेटर्स में इन दिनों काम कर रहे हैं। यदि मेरी यह आपसे अपील है कि भाईयों में हिन्दी के लिये कुछ करें।

३. शिक्षितों का इस संसार में अभाव है। चरित्र का यहां दर्शन तक नहीं

है परस्पर की ईर्ष्या और स्वार्थ ने तो इस कला के कलाकारों को इस तरह दबोच रक्खा है कि मानो उन्होंने मनुष्य-योगि में जन्म ही नहीं लिया है। यही कारण है कि कोई विद्वान, चरित्रवान इधर आता तक नहीं और आ भी जाता है तो थोड़े दिनों टक्करे मारकर सदा के लिये नमस्कार कर लेता है स्वयं मुझ पर ऐसे-ऐसे समय आते है कि नाटक लिखना तो क्या, 'नाटक' के नाम तक से घृणा हुई है; पर क्या करूँ, आखिर तो लंका में जाकर ही सीता माता की सुधि हनुमान जी को लेनी पड़ी थी, इस वातावरण में रहकर ही तो हिन्दी-माता और हिन्दू-जाति की कुछ सेवा, कुछ कल्याण कर सकूँगा-इसी उद्‌देश्य से जो कुछ बन पड़ता है, करता हूँ और करूँगा। जरूरत है कि हिन्दी रंगमंच लिमिटेड' बनाया जाये और उसमें सुयोग्य, शिक्षित एवं चरित्रवान व्यक्ति रखकर इस कला का उद्वार किया जाये।

अमेच्योर क्लब्स को जब मैं देखता हूँ तो और भी रो उठता हूँ। उनके यहां इस बात का तो आन्दोलन है कि पारसी कम्पनियों के नाटक अच्छे नहीं होते; पर स्वयं किसी ने भी कोई अच्छा नाटक लिखकर और खेलकर हिन्दी जगत् में धूम नहीं मचायी। अत्युक्ति नहीं होगी, अगर यह लिख दूँ कि मेरे 'वीर अभिमन्यु' 'परिवर्तन' और 'श्रवणकुमार' आदि नाटकों को सभी 'अमेच्योर क्लब' वालों ने खेला है, कोई भी भारत में ऐसा अमेच्योर क्लब नहीं है जिसने

न खेला हो। यद्यपि उन्हें खेलने का अधिकार नहीं है-न मेरी आज्ञा है न मालिकान कम्पनी की। यह तो मेरी कम्पनी के मालिकान की मुझ पर पूर्ण कृपा रही है कि मैंने उनके आज्ञानुसार अपने नाटक अपने राधेश्याम प्रेम, से प्रकाशित कर दिये हैं, नहीं तो इन क्वब वाले को यह भी नहीं मिलते। भाईयों, नवयुवकों कुछ कर दिखाओं, कुछ कर दिखाने का जमाना है। मैं बुड्ढा होने जा रहा हूँ-मरने के पहले एक बार यह देख लूँ कि हिन्दी के नाटक बंगला, मराठी, अंगरेजी तथा जर्मन भाषाओं के नाटकों से आगे बढ़ गए है, तो सच कहता हूँ, मुझे इसी जीवन में अपार आनन्द होगा।

लोक कलाएं : हमारी संस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति

ग्रामीण अंचलों की संस्कृति देश की विशाल संस्कृति की आत्मा है। इन अंचलों ठेक कलाएं : हमारी संस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति

ग्राकी सांस्कृतिक झलक जब बड़े नगरों में दिखाई दे जाती है तब वहां का जन समुदाय भाव विभोर होकर उन्हें अपना कहने के लिये व्यग्र हो उठता है। ऐसा लगता है कि भारतीय संस्कृति के प्राथमिक चरणों में शास्त्रीय कला का उद्‌गम भी लोक कला से ही हुआ। इसके साक्षात् प्रमाण हमें प्रागैतिहासिक युग और बाद में सभ्यता के उद्‌गम काल, मोहन जोदड़ों और हड़प्पा आदि में मिलते हैं।

भारत उत्सवों और पर्वों का देश है, कण-कण में यहां भगवान् का वास होता है इसीलिये प्रकृति की हर वस्तु पूज्य है। जन्म, ब्याह-शादी, त्योहारों और उत्सवों के समय दीवारों परया भूमि पर मंगल सूचक चिन्ह अंकित किये जाते हं, ये बात पुरानी परम्परा है। इन प्रतीकों में अपने भावों को प्रकट करने की असीम शक्ति है। धरती पर अंकित किये जाने वाले चित्रों को 'थापा' कहते हैं।

हरेक बड़े त्योहार, शादी-ब्याह पर अलग-अलग तरह के थापे बनाये जाते हैं। इनमें कोई केवल लाल सफेद, हरा सफेद रंग के बनाये जाते हैं और कई अलंकरण रंगीन भी बनाये जाते हैं। कहीं कहीं जातियों और जनपदों के अनुसार इनमें भेद भी होते हैं। परन्तु मूल प्रतीकों में बहुत समानता होती है। इनके थापों और चौकों की तुलना से हम थापों के ही सम्बन्ध को नहीं बल्कि उन लोगों के सम्बन्ध को भी कुछ-कुछ जान सकते हैं जिनके यहां ये प्रचलित हैं। कुछ थापे निम्न प्रकार हैं-नागपंचमी, साधन, पूरनमासी, होली, दीवाली, कार्तिक एकादशी, आठों थापा, देवी थापा, नवमी का धापा, गणगौर, रक्षाबन्धन, नाग पंचमी, हरछट, करवा चौथ, गोवर्धन, भैया दूज, देव उठान। दक्षिण में प्रातः व घरपर निम्य कोलम बनाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसे 'उरैन डालना' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों की लोक कलाएं विभिन्न नामों से प्रचलित हैं।

भारत की विशाल जनसंख्या भले ही साक्षर न रही हो, परन्तु उसके रक्त में सदा से ही संस्कारों के साथ एक उदात्त संस्कृति रची बसी रही हैं।

हस्तशिल्प व हस्तकलाओं का आधार सदा ही लोक कलाएं ही रही हैं जो

हमारी संस्कृति की प्रभावी अभिव्यक्तियां हैं। वहीं हमारे आर्थिक जीवन का सुदृढ़ आधार था। पाश्चात्य संस्कृति की अंधी दौड़ भी हमारी लोक कला की विरासत को नष्ट नहीं कर सकी। नगरों में भले ही नई पौध की लोक जीवन केसच्चे संस्कार न मिले हों पर ये हमारा सौभाग्य है कि समाज की उन महिलाओं को, जिन्हें हमारे आधुनिक प्रकाश में अनपढ़ और पिछड़ा मानते हैं, आज भी इस धरोहर को बचा कर रखने का श्रेय प्राप्त है। बचपन में मैंने अपनी नानी से लोक कला और उससे जुड़ी कथाओं को खूब सीखा, खूब याद किया। दीवार पर चित्रांकन से पूर्व की तैयारी, गोबर की पुताई और फिर ध ारातल को हरे रंग का आवरण देने के लिए खास पत्तियों से उन पर रगड़ाई। ये सब हम बच्चों के जिम्मे था। दोपहर का खाना खा पीकर करवा चौथ, परगेरू से रंगे धरातल पर होली आदि का चित्रण किया जाता था, कभी-कभी हमें भी रेखाएं और बूटे बनाने का काम दे दिया जाता था। इस बीच में कथा कहानियां भी चलती रहती थी। प्रसंगवश उससे सम्बन्धित लोक गीत भी गाये जाते थे। दशहरे पर झांकी, दीवाली पर चौक के रूप में अलंकरण। पूरा परिवार व्यस्त रहता था। एक अवर्णनीय पवित्र वातावरण बन जाता था। वास्तव में इन्हीं संस्कारों ने मुझे लोक संस्कृति से जोड़ा। बचपन में मां की मृत्यु के बाद नाना-नानी ने हमारा लालन पालन किया था। मुझे अच्छी तरह याद है ,

जब मेरा जन्मदिन मनाया जाता था, महिलाएं दीर्घ आयु के लिये मंगलगीत गाती थी। हल्दी से बंधी डोर से आयु के हिसाब से हर वर्ष एक गांड लगा दी जाती थी। महिलायें यह सब कुछ परंपरा में 'दूसरे' से सीखती थीं, उनमें आपस में स्पर्धा का या प्रतियोगिता का भाव नहीं होता था इन लोक कलाओं के साथ बचपन में मुझे जो लोक कला के अध्ययन का रस मिला था वह ध ीरे-धीरे आर्टस् कालेज की शिक्षा और फिर एक चित्रकार के रूप में बदलने वाला सिद्ध हुआ।

तात्पर्य यह है कि बचपन के ये संस्कार एक से दूसरे को, दूसरे से तीसरे को, तीसरे से चौथे को और इसी प्रकार लोक कला विकसित होती गई। समय पर हुये सामाजिक परिवर्तनों से प्रतीकों में नया जुड़ता भी गया। समकालीन कला के विकास, लोक कला प्रतीकों से खूब प्रयोग हो रहे हैं। इनमें सजीवता है, ओज और लालित्य हैं, उससे हमें स्फूर्ति मिलती है जीवन प्रफुल्लित होता है। संस्कृति बाहर से थोपी नहीं जा सकती। यह तो स्वयं विकसित होती है। देश और समय के अनुकूल होकर ही उसका विकास होताहै। लोक जीवन में संस्कृति के बहुत अच्छे तत्व होते हैं और विकृति नहीं के बराबर होती है। लोक गीत, लोक चित्र, लोक नृत्य, लोकभिनय सभी ने जन साधारण के मानस पटल पर ऐसा अंकित किया हैं कि उसे काल, परिस्थिति की हरताल मिटा नहीं सकते।

लोकनाट्य नौटंकी : वैशिष्ट्य और विडम्बना

लोकनाट्य नौटंकी का वैशिष्ट्य इस बात में निहित नहीं है कि वह लोक नाट्य की विविध विधाओं (रामलीला, रहसलीला, स्वांग, सपेरा, भंड़ैती, इन्दर सभा आदि) में अपना पृथक स्थान रखती है प्रत्युत् नौटंकी का महत्व इस बात में निहित है कि वह लोकनाट्य की उक्त विविध विधाओं में अकेले भारत के एक बड़ू भू-भाग पर फैले जनमानस को सीधा प्रभावित करती है, किसी भी विषय को अपने में रचा-पचा लेने की क्षमता रखती है और सर्वोपरि भारतीय संस्कृति के तमाम अवयवों को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्रीय अस्मिता की गौरव गरिमा में वार्धक्य कार्य करती हुई राष्ट्रीय ऐक्य की एक फौलादी कड़ी भी है। यदि हम किन्हीं कारणों से हम नौटंकी का वैशिष्ट्य न भी स्वीकारें तो हम इसे नौटंकी का निजस्व अवश्य कह सकते हैं। कदाचित इसीनिजस्व के बलबूते नौंटकी ने स्वस्थ मनोंरजन के धरातल पर खड़े होकर अपनी अथ से लेकर वर्तमान तक की यात्रा पूर्ण की है और जिसके विकास में कई शताब्दियों का योगदान है। यह बात भिन्न है कि नौटंकी ने अपनी विकास यात्रा में अनेक आरोह-अवरोह देखें, समय की मार के थपेड़ों को सहा, किन्तु वह विचलित

नहीं हुई और सदैव निरन्तर आगे बढ़ती गई, क्योंकि नौटंकी की इस नैरन्तर्य अजस प्रवाहित धारा के मूल में जहां एक ओर भारत की भारतीयता और उसकी गौरवमयी गाथा की अनकही कहानी को कहना रहा है तो सर्वोपरि समय-समय पर तत्कालीन समाज की सामाजिकता और उसमें अन्तर्निहित विदपताओं को बेवाकी से दर्शाना भी रहा है।

यहां तक ध्यातव्य है कि शोध की दृष्टि से नौटंकी तीन शताब्दियों से अधिक का प्रतिनिधित्व नहीं करती किन्तु जब हम नौटंकी के पृष्ठभूमि फलक पर दृष्टिपात करते हैं तो इसके बीज बिन्दु हमें कई शताब्दियों पीछे थकेलते हुए उनका अवलोकन फिर सिंहावलोकन करने को विवश करते हैं। इस संदर्भ में अधिक गहराई में न जाकर यहां यह कहना असंगत न होगा कि संस्कृत साहित्य के अनेक पृष्ठों पर, रामायण, महाभारत के अनेक स्थलों पर और हिन्दी साहित्य की ओजपूर्ण कविताओं में नौटंकी की चर्चा भले ही न हो, किन्तु नौटंकी का 'प्राण' कहे जाने वाले आदि और अवनद्ध वाद्य नक्कारा का वर्णन मानों साधिकार हुआ है। यह नक्कारा कहीं पणव, कहीं दुन्भि, कहीं भेरी तो कहीं पटह, धौंसा, निसान नगाड़ा प्रभृति नामों से अभिहित किया गया। जहां यह बात हमें कभी विस्मृत नहीं करनी चाहिए कि हमारी लोक कथाएं मूलतः एक प्रकार से श्रुतियां ही हैं जो सदी पर सदी एक कर्ण से दूसरे कर्ण तक

पहुंचती रही हैं और ऐसी लोक कथाओं में अपना अतीत भी सुरक्षित है और भविष्य के स्रोत भी, वहीं दूसरी ओर हमें इस सच को भी स्वीकारना पड़ेगा कि आदि वाद्यों (डमरू और नक्कारा) में यदि आरंभ से ही डमरू देवों की स्तुतिगान में लगा रहा तो नक्कारा लोक की मंगलकारी भावनाओं, कामनाओं सदेच्छाओं से तो सीधे जुड़ ही गया किन्तु समय-समय देवों के यशोगान और उनके आमोद-प्रमोद में भी काम आया।

यहां हम उस लोककथांश को लेते हैं जिससे हमारी बात की पुष्टि होती है। कहते हैं कि जिस समय विहन विनाशक शिव पुत्र गणेश बाल्यावस्था में थे, तभी किसी समय शिव ने देखा कि गणेश रो रहे हैं। भला कोई भी पिता पुत्र को रोते कैसे देख सकता है फिर क्या था शिव मनाने लगे, पर देखते क्या हैं कि जैसे-जैसे शिव मनाने का जतन करते हैं, वैसे-वैसे ही पुत्र के रोने फिर चीखने का स्वर बढ़ता ही जा रह है शिव चिन्तित हो उठे, किन्तु प्रभु की लीला का कौन जाने? पर कुछ क्षणों में क्या देखते हैं कि गणेश किलकारी भरते हुए किसी वाद्य से खेल रहे हैं। गणपति की ऐसी सौम्य मुद्रा को देख शिव तो आल्हादित हुए ही, मां पार्वती के उमड़े वात्सल्य ने उन्हें गोद में उठा लिया वस्तुतः वह कोई अन्य वाद्य न होकर ब्रह्मा द्वारा सृजित और और ऋषि नारद द्वारा गणेश को प्रदत्त भृण पात्र वाद्य था-नक्कारा। इतिहास भी इस बात

का साक्षी है कि मृण पात्र वाद्यों में सर्वप्रथम स्थान नक्कारा को ही प्राप्त हुआ है। आज न केवल हमारे वैयक्तिक संग्रहों वरन् भारतीय संग्रहालयों (राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद, भारतीय संग्रहालय, कलत्ता, राज्य संग्रहालय, लखनऊ) में संगृहीत प्रस्तर, काष्ठ, चित्र फलकों पर नक्कारा के विविध रूप देखने को मिलते हैं। भारतीय चित्रकला के उत्कृष्ट कोटि के उदाहरणों को अपने आप में संजाने वाला भारत कला भवन संग्रहालय (वाराणसी) को कौन नहीं जानता? यहां की 'निधि' नामक वीथिका में चौथी शताब्दी का 'ढोल बजाता बालक' को एक मृण मूर्ति फलक पर उकेरा गया है। वह अपने अप्रतिम सौन्दर्य से आपूरित तो है ही और नक्कारा का वर्तमान रूप न सही, किन्तु आरंभिक रूप को किस सहजता से दर्शाता है उससे भी नक्कारा की प्राचीनता सिद्ध होती है।

निश्चय ही इतिहास का मध्यकाल नक्कारा का स्वर्णकाल कहा जा सकता है क्योंकि हुमायूं, अकबर, जहांगीर जैसे मुगल शासकों के राज्य काल में जो चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची वही औरंगजेब के शासनकाल में आकर पतनोन्मुखी हो गई, हम इसे चित्रकला का दुर्भाग्य भी कह सकते हैं किन्तु अकबर और जहांगीर कालीन चित्रकला की सर्वोपरि विशेषता रही है-यथार्थ चित्रण में सहजता और स्वाभाविकता का अंकन हम दृष्टि से आज भारत और

भारत से इतर विदेशी संग्रहालयों में संगृहीत चित्रों में नक्कारा की बखूबियों से जिस प्रकार चित्रित किया गया है उससे न केवल नक्कारा का उद्‌दात्त रूप प्रकट होता है प्रत्युत कहीं-कहीं अपनी शक्ति का दम्भ भरते हुए भी चित्रित है और इन चित्रों में है-दो से लेकर आठ-आठ-दस-दस नक्कारों का सामूहिक वादन, प्रक्रिया में कलाकार की मुखमुद्रा व वेश भूषण, नक्कास पर मारी जाने वाली वादन चोब के अग्रभाग का हल्का टेढ़ापन नक्कारा और झील का रखाव सामंजस्य आदि। इन चित्रों में सबसे मार्के की बात यह है कि न केवली शाही महल के द्वार पर बल्कि शाही महल के भीतर होने वाले उत्सवों में नक्कारा वादन हो रहा है इनमें एक चित्र बड़े महत्व का है जो ब्रिट्रिश संग्रहालय में सुरक्षित है। इस चित्र में नक्कारवादन के साथ-साथ नर्तकी (संभवतः लोक नर्तक, नर्तकी) नृत्य मुद्रा में थिरक रहे हैं और इन दोनों के अर्थखुले मुख मानो किसी गायिकी का सूक्ष्म संकेत करते हैं। संक्षेप में जब हम इन समस्त प्रभावी विन्दुओं को एक साथ मिलाते हैं तो एक ओर नक्कारा की प्रवाहमान परम्परा दिखती है तो दूसरी ओर नौटंकी गायिकी का सूत्रपात भी।

नाना गुणों से परिपूर्ण और अंतहीन उपेक्षा का शिकार नक्कारा नौटंकी से कब और कैसे जुड़ गया? यह आश्चर्य का विषय भी है और हर्ष का भी। आज भी राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा, बिहार, बंगाल आदि राज्यों की कुछेक

गायिकाओं और देव स्तुतियों में नक्कारा वादन सहजता से देखा जा सकता है, किन्तु नौटंकी ने नक्कारा को जिस प्राणपण से गले लगाया कि फिर तो वह उसी का होकर रह गया। यह बात आज गर्व या साधिकार कही जा सकती है कि नक्कारा का स्वतंत्र अस्तित्व कुछ नहीं है, नौटंकियां भी नगण्य ही प्रदर्शित होती है तथापि पते की बात यह भी है कि नौटंकी का गढ़ उत्तर प्रदेश और उसके आस-पास के कुछ राज्यों के जिलों-अलीगढ़, हाथरस, मथुरा, आगरा, कानपुर, इटावा, बांदा, औरैया, काशी, इलाहाबाद, बदायूं, इलाहाबाद, काशी, ग्वालियर, लश्कर, रोहताश आदि में नक्कारावादक ही नहीं, धुरन्धर नक्कारा वादक खोजने से मिल जायेंगे। ये वादक अपने मलिन झोले में द ो चोब को लपेटे और नक्कारा की ओर टकटकी लगाये इस आशा से ताकते रहते हैं कि समय फिरेगा तो नक्कारा बजेगा ही।

हर्ष इस बात का है कि नक्कारा नौटंकी के गले का हार बन जाने के बाद नौटंकी ने खुद को और नक्कारा को एक सुनश्चित ढांचे में ढालकर एक परम्परा का रूप दिया। वास्तविकता यह है कि नक्कारा और नाटंकी का अन्तर्सम्बन्ध और इस विधा या परमपरा का उत्कर्ष जैसा हमें परतंत्रता के समय दिखाई दिया वैसा स्वतंत्र भारत में नहीं हुआ। वस्तुतः उन दिनों परतंत्र भारत को स्वतंत्र कराने का नौटंकी का अलग ही नुस्खा था या कहिए हथियार

था। उस समय क्या कानपुर, क्या इटावा, आगरा, मैनपुरी समूचा बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद, कन्नौज, बाराबंकी आदि स्थानों की मण्डलियां व कम्पनियां निर्भय होकर किसी भी स्थान पर धरती के मंच और आकाशीय परदे के बीच अपनास प्रदर्शन करते थे। इन कलाकारों के प्रदर्शन जहां एक ओर दर्शकों को पराधीनता की बेड़ियां तोड़ने के लिए हुंकार भरते हुए प्राजणोत्सर्ग तक हो उद्धत करते, वही इनके गीत पराधिनता के पास से मुक्ति दिलाने वाले राष्ट्रीय भावधारा के साथ एकता के सूत्र में बंधे रहने और संसार की असारता की ओर भी इंगित करते, जैसे-

'खिदमते मुल्क में जो कि मर जायेंगे,
नाम अपना जहां में वे कर जायेंगे।
लो अछतों को छाती लगा भाइयो,
वर्ना ये लाल गैरों के घर जायेंगे।
टूट जाये न माला कहीं प्रेम की,
वर्ना अनमोल मोती बिखर जायेंगे।
बात मानों न मानो खुशी आपकी,
हम मुसाफिर हैं कल अपने घर जायेंगे।''

नौटंकी कलाकारों की उक्त प्रकार की पंक्तियां सुनकर न केवल देश प्रेम द्धिगुणित होता था बल्कि देशद्रोही में भी देश प्रेम का स्फुरण हो जाता और यह स्फुरण आत्म धिक्कार का कार्य करता, फिर तो देशद्रोही भी देश की खातिर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता तब ऐसी अपार शक्ति भी नौटंकी में थी। यह ध्यातत्य है कि उक्त प्रकार के प्रदर्शन व गीतों के कारण ही श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी पर अंग्रेजों ने अंकुश लगा दिया था।

स्वतंत्रता के बाद नौटंकी प्रगति के नाम पर ठीक वैसे ही आगे बढ़ी, जैसे पीठ पीछे खाई हो और वह अपने सामने की प्रगति मानकर पीछे की ओर बढ़ता जाए। सन् साठ तक आते-आते हम पाते हैं कि इस समय के कलाकारों ने उन मानदण्डों को भुला दिया था जो कभी पं. नाथूराम गौड़ (हाथरस), श्रीकृष्ण पहलवान (कानपुर), त्रिमोहन लाल उर्फ नम्बरदार (मंधना) और लल्ली-अल्ली (इटावा) आदि ने स्थापित किये थे। इसका एक बड़ा कारण स्वतंत्रा को भुलाकर स्वच्छन्दता में विचरण करना भी था। अब न तो दर्शक को कला प्रिय रही थी और न कलाकार को। कलाकार का सर्वोपरि उद्देश्य बन गया धनोपार्जन।

धनोपार्जन की इस विकट लालसा ने बड़ी-बड़ी मण्डलियों, कम्पनियों को तोड़ दिया और अब-नाई की बारात में जने-जने ठाकुर-वाली कहावत चरितार्थ

होने लगी। अब अव्यावसायिक कलाकार भी व्यावसायिक हो गये। नौटंकी के पुराने वर्ण्य विषयों जैसे-सती अनुसुइया, सती सावित्री, भक्त प्रहलाद, भक्त ध्रुव, 'मातृ-पित्र भक्त श्रवण राजा मरथरी, नल दमयन्ती, मारू का गौना, इन्दल हरण, सीता हरण, राम वनवास, केवट संवाद आदि के स्थान पर नाई और ल कड़हारा, किसान की बेटी, भाई-बहिन, हिन्दू की गाय जैसे विषयों को लेकर नौटंकियां प्रदर्शित की जाने लगी। ऐसे नवीन विषयों के लेखक वे थे जिन्हें नौटंकी छन्दों का कोई ज्ञान न था और वैसी ही अवतारणा मंचीय कलाकार करते। यश और धन की पिपासा ने एक और बड़ा जघन्य अपराध कर डाला। हुआ यह कि जो कलाकार नौटंकी कम "नौटंकी बाज" ज्यादा थे, वे भी किसी न किसी नाम से मण्डली मालिक बन बैठे और तब से एक ओर हुआ नौटंकी छन्दों का लोप तथा दूसरी ओर जिस मंच पर कभी स्त्री पात्र की भूमिका का निर्वहन पुरुष ही करते थे, अब उस पर मंचासीन हुई-बाईजी। अधिकांश बाइयों का, कुछेक का छोड़कर, नौटंकी को कोई बड़ा योगदान नहीं है, क्योंकि वे नौटंकी तो नहीं कर सकती थी, पर अपने नाज नख्श और रसीले गीतों से दर्शकों को लहालोट अवश्य कर देती, फिर 'बाई' का ठुमका तो जग जाहिर है।

परिणाम यह हुआ कि नौटंकी में अश्लीलता तथा फूहड़पन आई। नौटंकी की विडम्बना देखिए कि इस अश्लील और फूहड़पन प्रदर्शन ने दर्शक के

मन-मस्तिष्क पर ऐसा विकृत, किन्तु अमिट प्रभाव डाला कि वह उक्त प्रकार के प्रदर्शन को ही अब नौटंकी मानने लगा और इससे इतर वह कुछ भी मानने को तैयार नहीं। यदि न्यायपूर्ण बात की जाए तो इस स्थल पर दर्शक निर्दोष है, क्योंकि नौटंकी मण्डलियों, कम्पनियों ने जैसा दिखाया, दर्शक ने वैसा ही देखा और वह उसी प्रकार का आदी हो गया। नौटंकी के इस देखने और दिखाने का जहां तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि नौटंकी स्वयं गर्त में चली गई वहीं इसका दूरगामी परिणाम यह हुआ आज का रसिक जनमानस उपरोक्त प्रकार की नौटंकी को ही नौटंकी मानता है और वैसा ही देखने की चाहत रखता है। अन्ततः लोक इसका उपहास भी इन शब्दों में करता-'अमाँ क्या नौटंकी करते हो' नौटंकी कम दिखाओ, 'वहतो बड़ा नौटंकी बात है।' आदि आदि।

आज नौटंकी के लिए प्रसन्नता की बात है कि कुछ लोग पूर्वाग्रहों से मुक्त हो रहे हैं तथा सोच और दृष्टि दोनों के सामंजस्य से नई पौध आधुनिकता और व्यावसायिकता जैसे विषाक्त तत्वों से बचती हुई नौटंकी के प्रति आकर्षित हो रही है। नौटंकी के उत्थान हेतु वैयक्ति व सरकारी संस्थाओं जैसे-सूर स्मारक मण्डल (आगरा), भारत भवन व मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, (भोपाल) भारतीय संग्रहालय, (कलकत्ता), काशी हिन्दू विश्व विद्यालय,

संस्कृति निदेशालय, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, रेशम निदेशालय (लखनऊ) सांस्कृतिक केन्द्र (वाराणसी), उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृकि केन्द्र, (इलाहाबाद) और संस्कृति मंत्रालय (भारत सरकार) आदि का समय-समय पर दिया गया योगदान भी सराहनीय है। नौटंकी के विविध पक्षों को प्रोत्साहन, संरक्षण, संवर्धन प्रदान करने की दिशा में 'नौटंकी कला केन्द्र' नामक संस्थान कटिबद्ध है। नौटंकी के उत्थान के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान करने वो व्यक्ति और संस्थानों को उस वैशिष्ट्य को भी समझना होगा जो लोकनाट्य नौटंकी में अंतर्निहित है। वस्तुतः हमें यह ज्ञात है कि नौटंकी का वैश्ट्रिय उसकी छन्द गायिकी में है और नौटंकी की यह छन्द निधि कई प्रान्तों की राग-रागिनियों का प्रतिनिधित्व करती है। जब तक हम न केवल दोहा, चौबोला, बहर तबील, दौड़, बल्कि-जिकड़ी लावनी, लंगड़ी, रंगत, लावनी, थिएटर और उसके प्रकार, वार्ता वेलमा आल्हा, मांड़ रेखता, शकिस्त, हरिगीतिका आदि छन्दों की आत्म पुकार तक न पहुंचेगे, उनको प्रयोग में न लावेंगे, स्वस्थ प्रदर्शन न करेंगे तब तक न तो हम अरसिकों में रस का प्रादुर्भाव कर सकेंगे न रसिकों को अपनी गायिकी से रसाप्लावित कर सकेंगे और न तब तक नौटंकी खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकेगी।

अवध की प्रतिनिधि लोक-विधायें

कजरी (कजली)

इसे कजली देवी का पूजा गीत कहा जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह कन्तित नरेश की पुत्री कजली का विरह गीत है। यों, कजली विन्ध्यवासिनी देवी का पर्याय है। यह मूलतः आराधना गीत है। इसका गायन मुख्यतः वर्षा ऋतु में होता है। हरितालिका तीज (कजली का त्यौहार) इसका मुख्य वर्ण्य विषय है। आज यह एक रागिनी विशेष के रूप में भी प्रचलित है। मिर्जापुर इसका प्रमुख क्षेत्र है, जहां कजली का दंगल प्रतिवर्ष आयोजित होता है। इस समूहगान में, ''अरे रामा, रे हारी'' की धुन बड़ी हृदयाकर्षक होती है।

बारहमासा

यह वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला अत्यन्त प्रिय ऋतुपरक गीत है। इसमें वर्ष के बारहों महीने की प्रकृति का बड़ा ही सहज स्वाभाविक वर्णन रहताहै। ये गीत विप्रलम्भ प्रधान होते हैं। इसमें किसी विरहिणी की विरह-व्यथा का चित्रांकन प्रकृति के विविध चित्रों एवं घटनाओं की पृष्ठभूमि में किया जाता है।

बिरहा

बिरहा की उत्पत्ति 'विरह' से हुयी है। अवध में बिरहा गायन की परम्परा आति प्राचीन है। यह आभीर (अहीर) जाति का लोकप्रिय ऋतुगीत है। सम्प्रति यह एक छंद विशेष भी है। इसे पुरुष वर्ग एकल गायन के रूप में गाता है। आज भाव, वैविध्य की दृष्टि से बिरहा गीतों का विषय कुछ भी हो सकता है। यों मूलतः इसे श्रृंगारपरक विप्रलंभ काव्य कहा जा सकता है।

फाग

यह एक ऋतुपरक गीत है, जो होलिकोत्सव के अवसर पर गाया जाता है। ओजस्विता इन गीतों का मुख्य गुण है। फाग गीतों का वर्ण्य विषय प्रायः पौराणिक, धार्मिक, सामाकि, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक हुआ करता है। अवध क्षेत्र में रामाश्रयी तथा कृष्णाश्रयी दो प्रकार के फागों का अधिक प्रचलन है। इसे समूहगान के रूप में कई लोग वाद्यों सहित एक साथ घूम-घूमकर या टोली बनाकर गातें हैं।

होरी

होलिकोत्सव के अधिकांश लोकगीत अवध क्षेत्र में पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं, केवल यही होरी गीत स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। इसमें वे वाद्यों सहित

सामूहिक रूप से उल्लास व्यक्त करती हैं।

चहली

अवध प्रदेश में होलिकोत्सव के अवसर पर सवाद्य वृन्दावन के रूप में गाया जाने वाला यह लोकगीत विशेष चहल-पहल पूर्ण होने के कारण चहली कहलाता है। इसमें विविध पौराणिक आख्यान उपलब्ध होते हैं। यह वाद्य यंत्रों सहित गाया जाने वाला एक वृन्दगान है।

लेज

यह होलिकोत्सव पर वृन्दावन के रूप में ढोलक, झांझ जैसे वाद्यों सहित विलिम्बित स्वर से आलापपूर्वक गाया जाने वाला एक शास्त्रीय लोकगीत है। यथा-शम्भुसुत सुनहु विनय एक मोरि-मोरि विनय श्रवण करि लीजै कहत दोउ कर जोरि।

सोहर

यह जन्मोत्सव पर गाया जाने वाला मंगलगीत है। विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति ''शोभन्'' शब्द से मानी है। सोहर गीतों में मातृत्व, वात्सल्य और परिवार-भावना का बीज विद्यमान रहता है। इस गीत की परंपरा अति प्राचीन

है। प्राचीन सोहर गीतों में पुत्र-जन्म से सम्बन्धित भागों को ही दर्शाया गया है किन्तु आधुनिक युग में समकालीन चिंतन को भी इन गीतों में समेट लिया गया है।

सरिया

पुत्र जन्म के अवसर पर गाया जाने वाला यह एक विशिष्ट अवधी लोकगीत है। इसमें प्रसव पीड़ा के आरम्भ होने, दाई के बुलाने, उसका मान-मनावन करने और फिर हर्षोल्लास मनाने का आख्यान वर्णित है। यह मौखिक रूप से गाया जाने वाला समूहगान है।

बनरा

बन्ना (बन्ना) और बन्नी (बन्नी) अवधी के प्रसिद्ध वैवाहिक लोकगीत हैं। इसमें हास-परिहास, आनन्द-उल्लास और स्नेह-सौहार्द व्यक्त किया जाता है।

गारी

अवध क्षेत्र में विवाह ज्योनार आदि शुभ अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गारी गाने की प्राचीन-प्रचलित परम्पारा रही है। मान्य अतिथियों के भोजन के समय जो मीठी-मीठी गारी गायी जाती है वह घनिष्ठता की द्योतक होती है। ये

गारियां प्राचीन शैली में राम-विवाह का प्रसंग बनाकर गाई जाती है। आधुनिक गारी गीत में राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं को भी प्रश्रय मिला है।

धोबिया

धोबी (रजक वर्ग) के जातीय गीतों को 'धोबिया गीत' कहा जाता है। धोबिया गीतों को एक विशेष गायकी के आधार पर गाया जाता है, इसलिए इसे धोबिया राग भी कहा जाता है और नृत्य गीत भी।

धोबिया गीत प्रायः अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली होते हैं। आज इनका विषय जातीयता से उठकर काफी विस्तृत हो गया है। धोबिया गीतों में करुण श्रृंगार रस की बहुलता होती है।

कहरवा

खुनखुनिया के गायक अवध में ही पायेग जाते हैं। खुनखुनिया अहीरों के कुलयाचक कहे जाते हैं जो उन्हीं की प्रशस्ति में लोक-गाथायें प्रस्तुत करते हैं। खुनखुनिया लोकगाथाओं में हरिया-ऊभन की गाथा, वीर पाल्हना की गाथा और सेला-सहजिया की गाथा काफी प्रचलित है। ये गायक बंसु नामक वाद्य को उंगुलियों में घुंघरू फंसाकर बजाते हैं और केवल अहीर समाज में ही पूर्वजों की शौर्य गाथायें प्रस्तुत करते हैं।

पसिया

अवध में बसी हुई पासी जाति द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला 'पसिया' एक प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य गीत है। इसमें नर्तकी का वेष धारण करके पुरुष गायक का विदूषक के साथ गद्य-पद्य पूर्ण संवादों का सहारा लेकर प्रायः सामाजिक विद्रुपताओं पर प्रहार करते हैं और विभिन्न हावों-भावों का अभिनय करते हुए यह लोकनृत्य प्रस्तुत करते हैं।

भगत

यह चमार (रैदास) जाति द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत है, जिसे हुड़क, डहॅकी आदि वाद्यों के साथ प्रस्तुत किया जाता है इसमें प्रायः भक्तिभाव पूर्ण उद्गार व्यक्त किये जाते हैं। इस समूहगान में भक्ति और दर्शन का स्वर प्रधान होता है।

निरगुन

भारतीय चिन्तकों ने धर्म और दर्शन को जीवन का अभिन्न अंग मानकर पर्याप्त कार्य किया है। ब्रह्म के दो रूप भारतीय जनमानस मे परिव्याप्त हैं-सगुण और निर्गुण। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में गाये गये तथाकथित निम्नवर्णों के गीत 'निरगुन' कहलाये। इन पर कबीर पंथियों का प्रकटतः प्रभाव

पड़ा है। ये भक्ति के गीत हैं इनका वर्ण्य-विषय है ज्ञान, वैराग्य जप-जोग आदि।

लहचारी

यह स्तुतिपरक देवी गीत है। इसका सम्बन्ध लाचारी अर्थात् दैन्य से माना गया है। यह आर्त्तभक्त का एक प्रप्ति भाव है, जिसे विनय पदाली से सम्बद्ध कहा जा सकता है। लाचारी गीत धार्मिक होने के साथ ही साथ सामाजिक चेतना से भी सम्बन्धित होते हैं। इसे ढोलक-मंजीरे आदि वाद्यों के साथ वृन्द-गान के रूप में गाया जाता है।

पचरा

पचरा नामक गीत दुसाधों में प्रचलित है। इनका विश्वास है कि समस्त अधिभौतिक दुःख पचरा गाकर दूर किये जा सकते हैं। दुसाथा लोग राहु की पूजा करते और सुअर की बलि देते हैं।

भजन

मनुष्य सांसारिक क्रियाकलापों की समस्याओं से त्राण पाने के लिए आनन्द की खोज करता है और निराशा के क्षणें में वह ईश्वर का स्मरण करता है।

उसी स्मरण के लोकगीतों में भजन कहा जाता है। इन भजनों में प्रायः ईश्वर और उसकी महिमा, जीवन की क्षण-भंगुरता, जीव और माया आदि का वर्णन समाहित रहता है।

देवीगीत

मांगलिक संस्कार के कुछ दिन पूर्व से ही अवध क्षेत्र में सांझ मनायी जाती है। इसे 'गीत निकालना' अथवा 'धान गीत' के अवसर पर गेहूं, चना आदि खाद्यान्नों की सफाई की जाती है। इस अवसर पर काम करते समय स्त्रियां देवी के गीत गाती है। इन गीतों के साथ ही कहीं-कहीं सोहर भी गाये जाते हैं।

आल्हा

यह आदिकाल (वीरगाथा काल) के महाकवि जगनिक द्वारा प्रणीत और परमाल रासों पर आधारित बुन्देली तथा अवधी का एक महत्वपूर्ण छन्द है, जिसका प्रणयन लगभग सन् १२५० में हुआ था। इसमें महोबा के वीर आल्हा और ऊदल की कथा है। यह अवध और बुंदेलखण्ड की सर्वाधिक लोकप्रिय वीर-गाथा है। पावस ऋतु में सामूहिक रूप से अथवा निजी स्तर पर इसका गायन प्रायः होता दिखता है। आल्हा के अनेक संस्करण हैं, जिनमें कहीं ५२

और कहीं ५६ लड़ाइयां वर्णित हैं। इस लोकमहाकाव्य की गायकी की अनेक पद्धतियां अवध में प्रचलित हैं।

ढोला

यह एक लोकप्रिय गाथा है, जिसका सम्बन्ध ढोला-मरवांग (मारू) संस्थापित किया जा सकता है। इसका मूल रूप राजस्थानी लोक-साहित्य में मिलता है। इसकी विषय-वस्तु वीर और श्रृंगाररस पूर्ण है। अवध लोकांचल में गाया जाने वाला ढोला वृन्दावन के रूप में विविध वाद्यों के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

भरथरी

राजा भरथरी ने गोरखनाथ से दीक्षा लेकर जिस प्रकार रानी पिंगला और राज्य सम्पदा का परित्याग किया और जोगी वेष धारण कर लिया, उस कथा को गोपीचंद-भरथरी कहा जाता है। यह एकल गाया जाने वाला लोकाख्यान है जिसमें श्रृंगार और करुणा का द्वंद्व मुखरित हुआ है।

सरवन

श्रवणकुमार राजा दशरथ के शब्दबाण से जब आहत हो जाता है तो उसके अन्धे माता-पिता (जिन्हें डोली में बिठाकर वह तीर्थाटन कर रहा था)

विलाप करते हैं। इस लोकगाथा में जो करूणा, वात्सल्य भाव व्यक्त हुआ है, वह वस्तुतः बड़ा मर्मान्तक है। इसे भी एकल गायकी द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

रामलीला

यह तुलसीत रामायण के आधार पर निर्मित लोकनाट्य है। रामलीला का मंच प्रायः मैदान में तैयार किया जाता है। पात्रों के अनुरूप अलग-अलग स्थान भी बना दिये जते हैं और बीच में रामायण मंडली बैठती है। यह मंडली रामायण का सस्वर पाठ करती हुई कथानक को आगे बढ़ाती है। आवश्यकतानुसार पात्र बीच-बीच में दर्शकों से भी संवाद कर लेता है।

नौटंकी

यह प्रस्तुत गीति नाट्य है, जो सामाजिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करतीद है। नौटंकी में अभिनय के नाम पर नाटकीय मुद्राओं का साधारण प्रदर्शन होता है। चूंकि कथानक जनरूचि के आधार पर निर्मित होता है फलतः इनमें अश्लीलता का भी पर्याप्त समावेश पाया जाता है। नौटंकी अवधी क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रचलित लोक-नाट्य है। इसमें हारमोनियम, ढोलक के अतिरिक्त नक्कारे का विशेष प्रयोग होता है। नृत्य तथा गद्य-पद्य पूर्ण संवाद इसके मुख्य

आकर्षण है।

स्वांग

यह एक लोकप्रिय 'लोकनाट्य' है। विभिन्न जातियों विशेष रूप से कहार, चमार और धोबी अपने यहां जन्मोत्सव, विवाह आदि आवरों पर 'स्वांग' करते हैं। ये स्वांग खुले रंगमंच पर होते हैं। इसमें छोटी-छोटी कहानियों के साथ-साथ उच्च वर्ग के लोगों पर व्यंग्य भी किया जाता है।

लावनी

यह एक छन्द विशेष है, जिसे शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य दोनों ने अपनाया है। इसमें विभिन्न भावों का समावेश होता है। यह व्यक्ति और समूह गान के रूप में, वाद्यों सहित मौखिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यत्र-तत्र इसमें 'ख्याल' को आत्मसात कर लिा गया है। कहीं-कहीं इसे 'तुर्राकलगी' से जोड़ दिया जाता गया है।

श्रमगीत–जँतसार

चक्की पीसते समय स्त्रियों द्वारा जो मौखिक गीत गाये जाते हैं उन्हें अवध में जँतसार कहते हैं जँतसार वास्तव में यंत्रशाला का प्रतीक है, जिसका अर्थ है वह शाला या घर जिसमें जाँत रखा जाता हो। ये गीत पिसाई की

थकावट को दूर करने के लिए गाये जाते हैं। जँतसार के गीतों में स्त्रियों की मनोदशा का बड़ा ही मधुर चित्रण रहता है।

मोरबीन

मोर के उन्मादी नृत्य तथा सूर्य बीन को आधार बनाकर लखनऊ के फनकारों ने एक नितान्त नये साज की खोज की जिसे मोरबीन के नाम से जाना गया है। अंग्रेजी में इसे ''बैग पाइपर'' के नाम से पुकारा जाता है। मोरबीन नृत्य रंग बिखेरने वाला नृत्य है। मोरबीन तथा मश्कबीन वाद्या मोर के आकार का होता है। तथा इसकी धुन अत्यन्त सुमधुर और लुभावनी होती है। इस नृत्य में महिलाओं का शामिल होना वर्जित है। अवध के इस सुप्रसिद्ध नृत्य को मश्कबीन और लेजम के विशेष लयात्मक सामंजस्य के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

लिल्ली घोड़ी नृत्य

ग्रामीण क्षेत्रों में मेलों/उत्सवों के अवसर पर लिल्ली घोड़ी का नृत्य प्रचलित है। लिल्ली घोड़ी सवार गीत के साथ अनेक चालें और करतब दिखाता है। घोड़ी की लगाम पकड़कर इधर-उधरी मोड़कर नृत्य करता हुआ सवार आकर्षण का केन्द्र होता है।

थारू

उ.प्र. के तराई क्षेत्रों में बसे थारू जनजाति द्वारा होली एवं अन्य विशेष अवसरों पर नृत्य एवं गीत के माध्यम से अपने हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति की जाती है। मुख्य नृत्य संरचना में होलिका-दहन के पश्चात् उसके चारो ओर मण्डलाकार घेरा बनाकर स्त्री-पुरुष, ढोल की थाप पर, घेरे की परिधि में नृत्य करते है। सारी रात चलने वाले इन नृत्यों में मुख्य वाद्य ढोल है। इसके अतिरिक्त झांझ और मंजीरा का प्रयोग किया जाता है।

नकटौरा

नकटौरा लोक नाट्यों की एक सुकुमार तथा अनछुई विद्या है जो स्वांग नामक लोक-नाट्य की श्रेणी में आता है। इसका मंचन सार्वजनिक न होने के कारण पुरुष वर्ग देखते नहीं है। कई घंटे तक लगातार गीत एवं नृत्य के बीच में स्वांग के रूप में पुरुषों और महिलाओं, दोनों की भूमिका में स्त्रियां आती है। और रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। नकटौरा का आयोजन केवल विवाह के अवसर पर किया जाता है अन्य किसी उत्सव, समारोह या संस्कार के समय नहीं।

कलाकारों की सूची

नौटंकी–

1. अभिलाष नारायण, 67 (68/ए2), स्टैनली रोड, ममफोर्डगंज, इलाहाबाद।
2. अमर सिंह, ई–3126, राजाजीपुरम, लखनऊ।
3. गुलाब कली, ग्राम ढोढरी पोस्ट– अकोढ़ा, करछना, इलाहाबाद।
4. चन्दा देवी, ग्राम व पोस्ट– नवीनगर, तहसील– लहरपुर, सीतापुर।
5. जमील अहमद, 170/20बी, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
6. बेबी नाज, 302/3, इमामवाली गली, अकबरी गेट, चौक, लखनऊ।
7. राम लखन वर्मा, झंकार लोक नाट्य मंच चौक, लखनऊ।
8. राज किशोर, ग्राम– मटेहना, पोस्ट– निहस्था, रायबरेली।
9. विनोद रस्तोगी, 975/634, दारागंज, इलाहाबाद।
10. शहजादा सलीम, कलाकृति, ग्राम व पोस्ट– उतरेठिया, लखनऊ।

रामलीला–

1. अनिल कुमार, श्री रामकृष्ण आदर्श लीला मण्डल, ग्राम– बल्डिहा, पोस्ट– चारू, जिला गोण्डा।

2. अवध किशोर पाठक, हनुमत आदर्श रामलीला मण्डल, राजद्वार मन्दिर, अयोध्या, फैजाबाद।

3. अखिलेश सिंह, कनकपुर, कटरा शिवदयालगंज, गोण्डा।

4. अभिमन्यु प्रसाद, श्री दुर्गा अवध आदर्श रामलीला मण्डल, रायगंज, मलौना, जनपद उन्नाव।

5. अमर सिंह, श्री संकट मोचन आदर्श रामलीला मण्डल, गुलरिहा, मलौन, जनपद उन्नाव।

6. गोपीनाथ शुक्ल, श्री धाम अवध रामलीला मण्डल, 4/2/43 रामनगर, अयोध्या, फैजाबाद।

7. चन्द्र प्रताप पाठक, श्री हनुमत आदर्श रामलीला मण्डल, अयोध्या, फैजाबाद।

8. जैरामदास व्यास, पत्थर मन्दिर, वासुदेव घाट, अयोध्या, फैजाबाद।

9. दुर्गेश कुमार सिंह, ग्राम नेवादा, पोस्ट– नेवादा, वल्दीराम, जिला सुल्तानपुर।

10. प्रेमनारायण दीक्षित, श्री शिवशक्ति आदर्श रामलीला संस्थान, परसा, अयोध्या, फैजाबाद।

11. महाबीर शरण, श्री जानकीघाट, बड़ा स्थान, अयोध्या, फैजाबाद।

12. मनोज कुमार श्रीवास्तव, श्री शिवशक्ति आदर्श रामलीला मण्डल, अयोध्या, फैजाबाद।

13. माधुरी मिश्रा, श्री सीताराम आदर्श रामलीला मण्डल, स्वर्गद्वार, अयोध्या, फैजाबाद।

14. मनीष दास, राम कचहरी चारों धाम, अयोध्या, फैजाबाद।

15. राजीव लोचन मिश्र, श्री नागेश्वर आदर्श रामलीला मण्डल, स्वर्गद्वार, अयोध्या, फैजाबाद।

16. राती दत्त आदर्श रामलीला रासलीला मण्डल, 7 गांधीनगर, तेलीबाग, लखनऊ।

17. राकेश कुमार त्रिपाठी, कटका मन्दिर, तुलसी बाड़ी, परिक्रमा मार्ग, रामघाट, अयोध्या, फैजाबाद।

18. राजीव कुमार सिंह, 50सी/1बी, गोविन्दपुर कालोनी, तेलियरगंज, इलाहाबाद।

19. रविन्द्र कुमार दूबे, आदर्श रामलीला प्रचार मण्डल, स्वर्गद्वार, अयोध्या, फैजाबाद।

20. राजेश कुमार पाण्डेय, श्री साकेत बिहारी आदर्श रामलीला मण्डल, अयोध्या, फैजाबाद।

21. रामचन्द्र शरण, श्री मारूति नन्दन हनुमत आदर्श रामलीला मण्डल, अयोध्या, फैजाबाद।

22. लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री लक्ष्मी आदर्श रामलीला मण्डल, स्वर्गद्वार, अयोध्या, फैजाबाद।

23. विश्राम पाण्डेय, श्री धनुषधार अवध आदर्श रामलीला मण्डल, कैथाना, टेड़ी बाजार, अयोध्या, फैजाबाद।

24. शत्रुघ्न सिंह मण्डल, मो. महरान, पोस्ट– नवाबगंज, गोण्डा।

25. शशिकान्त दास, आन्जनेय भवन वासुदेव घाट, अयोध्या, फैजाबाद।

26. शक्ति सिंह, श्री शिव शक्ति आदर्श रामलीला मण्डल, ग्राम व पोस्ट– नेवादा, जिला– सुल्तानपुर।

27. श्यामबिहारी शर्मा, श्री जानकी जीवन आदर्श लीला मण्डल, ग्राम वेल्डिहा, पोस्ट– चाक, जिला गोण्डा।

28. शिवकरन दास, श्री हनुमान विजय रामलीला मण्डल, गुलरिहा, मलौना, उन्नाव।

29. सत्यनारायण मिश्र, स्वर्गद्वार निकट– नागेश्वरनाथ, अयोध्या, फैजाबाद।

30. डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा, ग्राम– डीह (अशोकपुर चाचू सराय), सिरौली कला, बाराबंकी।

31. सूर्यप्रकाश पाण्डेय, दशरथ जी का इच्छा भवन, रामकोट, अयोध्या, फैजाबाद।

32. संतोष कुमार पाण्डेय, प्रमोद वन, बड़ी कुटिया, अयोध्या, फैजाबाद।

33. समीर कुमार, सम्पूर्ण कला केन्द्र, लखनऊ, एफ–849, राजाजीपुरम, लखनऊ।

34. हरिशरण श्रृंगारी नर्वदाखण्ड हनु0 आ0 रा0 मण्डली, अयोध्या, फैजाबाद।

कठपुतली–

1. अनिरुद्ध मिश्रा, 4/183, विकास नगर, लखनऊ।
2. दीपा मित्रा, 69, रवीन्द्रपल्ली, फैजाबाद रोड, लखनऊ।
3. नारायण श्रीवास्तव, एफ–3737/9, राजाजीपुरम, लखनऊ।
4. प्रदीप नाथ त्रिपाठी, 405/158, चौपटिया, लखनऊ।
5. अनिल श्रीवास्तव, 2, मालवीय पल्ली, संजय नगर, ऐशबाग, लखनऊ।
6. मनमोहन लाल, एफ–3567, राजाजीपुरम, लखनऊ।
7. परमानन्द, 285/169घ, नया शिव मन्दिर, करेहटा, लखनऊ।
8. सुरेन्द्र कुमार, ग्राम– कुरौनी, पोस्ट– बन्थरा, लखनऊ।